जून–2022

अखण्ड ज्योति

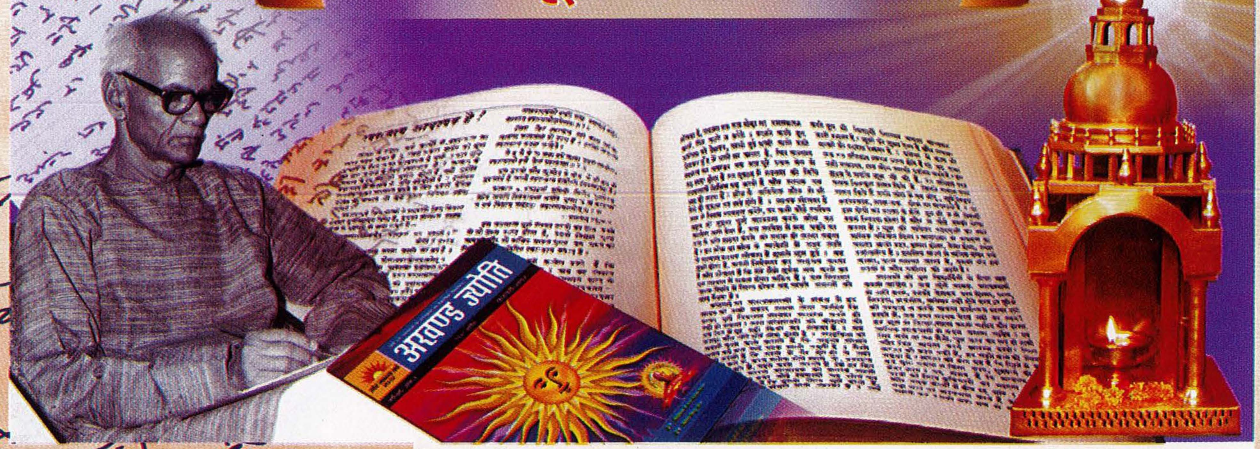
धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

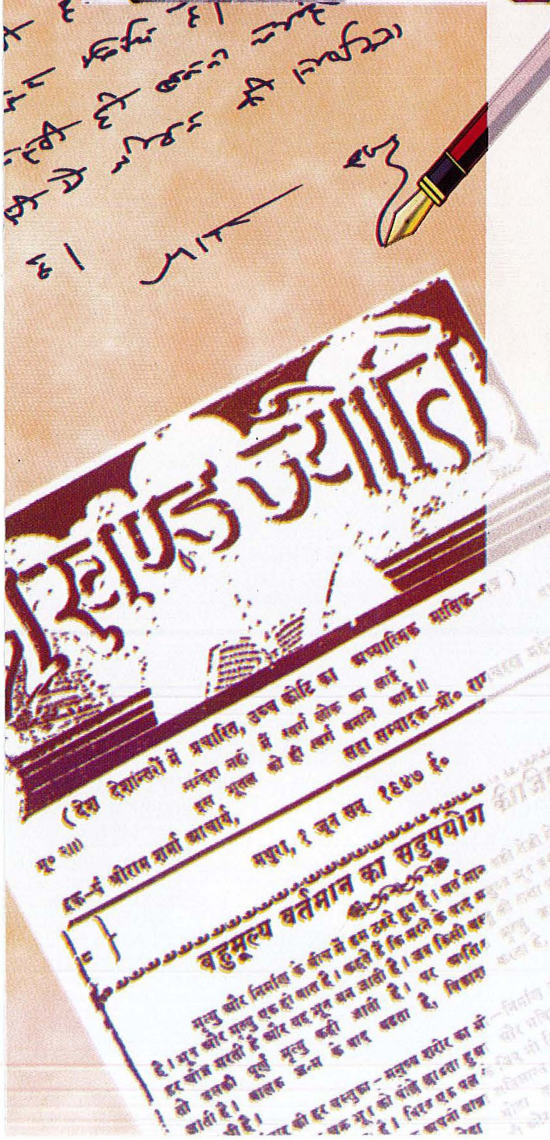
वर्ष–86 । अंक–6 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक



अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

जून—1947





बहुमूल्य वर्तमान का सदुपयोग कीजिए

"मृत्यु और निर्माण के बीच में हम ठहरे हुए हैं। वर्तमान बड़ी तेजी से भूत की ओर दौड़ता है। भूत और मृत्यु एक ही बात है। कहते हैं कि मरने के बाद मनुष्य भूत बनता है। मनुष्य ही नहीं, हर चीज मरती है और वह भूत बन जाती है। जब किसी वस्तु की सत्ता पूर्णतः समाप्त हो जाती है तो उसकी पूर्ण मृत्यु कही जाती है। पर आंशिक मृत्यु जन्म के साथ ही आरंभ हो जाती है। बालक जन्म के बाद बढ़ता है, विकास करता है, उसकी यह यात्रा मृत्यु की ओर भी है।

संसार की हर वस्तु का-मनुष्य शरीर का भी—निर्माण उन्हीं तत्त्वों से हुआ है, जो हर क्षण बदलते हैं। उनका चक्र भूत को पीछे छोड़ता हुआ और भविष्य को पकड़ता हुआ प्रतिक्षण बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है। विश्व एक पल के लिए भी स्थिर नहीं रहता। अणु—परमाणुओं से लेकर विशालकाय ग्रह पिंड तक अपनी यात्रा अविश्रांत गति से कर रहे हैं।

हमारा जीवन भी हर घड़ी थोड़ा-थोड़ा करके मर रहा है, इस दीपक का तेल शनैः शनैः चुकता चला जा रहा है। भविष्य की ओर हम चल रहे हैं, और वर्तमान को भूत की गोद में पटकते जाते हैं, यह सब देखते हुए भी हम नहीं सोचते कि क्या वर्तमान का कोई सदुपयोग हो सकता है? जो बीत गया, सो गया—जो आने वाला है, वह भविष्य के गर्भ में है। वर्तमान हमारे हाथ में है। यदि हम चाहें तो उसका सदुपयोग करके इस नश्वर जीवन में से कुछ अनश्वर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य



संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	86
अंक	:	06
जून	:	2022
ज्येष्ठ-आषाढ़	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.05.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	:	220/-
विदेश में	:	1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	:	5000/-

आनंद

रेशम का कीड़ा जो खोल अपने लिए बुनता है, उसी में बँधकर रह जाता है। मकड़ी को बंधन में बाँधने वाला जाला उसका अपना ही बुना हुआ होता है। इसे उनकी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया ही कह सकते हैं। जब रेशम का कीड़ा खोल में से निकलने की सोचता है तो बुनने की तरह उसे कुतरने में ही कुछ कठिनाई नहीं होती। मकड़ी चाहे तो अपने जाल को कभी भी समेट सकती है। इंद्रियलिप्साओं और ममता-अहंता को प्रधानता देकर मनुष्य शोक-संताप की विपन्नता से त्रस्त होता है। यदि वह अपने जीवन की दिशा को बदल डाले तो जीवनमुक्त स्थिति का आनंद प्राप्त करने से उसे कौन रोक सकता है ?

मनुष्य को विचार करने की और उसके अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। उसका उपयोग भली या बुरी, सही या गलत किसी भी दिशा में वह स्वतंत्रतापूर्वक कर सकता है। बंधन में बँधना भी उसके हाथ में है और उससे मुक्ति भी उसके ही हाथ में है। समस्त विभूतियों से संपन्न मानव जीवन का अनुदान और सर्वत्र स्वतंत्रता का उपहार देकर भगवान ने अपने अनुग्रह को सिद्ध कर दिया। अब यह मनुष्य पर ही निर्भर है कि वह उसका सदुपयोग करके जीवनमुक्त स्थिति को प्राप्त करे अथवा दुरुपयोग करके मोहपाश, लिप्साजाल में आबद्ध हो जाए। पीड़ा अथवा आनंद—दोनों ही संभावनाएँ मनुष्य के अपने हाथ में ही हैं। ❐

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

आराध्य माँ गायत्री एवं परमपूज्य गुरुदेव

जून-जुलाई, 2022 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	02 जून	महाराणा प्रताप जयंती	शुक्रवार	01 जुलाई	रथयात्रा
रविवार	05 जून	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	05 जुलाई	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	10 जून	गायत्री जयंती/पूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस	रविवार	10 जुलाई	देवशयनी एकादशी
			बुधवार	13 जुलाई	गुरु पूर्णिमा
शनिवार	11 जून	निर्जला एकादशी	रविवार	24 जुलाई	कामिका एकादशी
मंगलवार	14 जून	कबीर जयंती/ज्येष्ठ पूर्णिमा	गुरुवार	28 जुलाई	हरियाली अमावस्या
शुक्रवार	24 जून	योगिनी एकादशी	रविवार	31 जुलाई	मुहर्रम—1

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

संस्कार-परंपरा को गतिशील रखें



वैज्ञानिकों से लेकर अध्यात्मवेत्ताओं—प्रत्येक के लिए मनुष्य का जीवनोद्देश्य एक गंभीर चिंतन एवं विमर्श का विषय है। वर्तमान परिस्थितियों में, जब मानवीय जीवन भाँति-भाँति की समस्याओं, आशंकाओं से घिरा हुआ दिखाई पड़ता है—यह प्रश्न और भी ज्यादा सामयिक एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसमें दो मत नहीं कि प्राणिजगत् में मनुष्य को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

मनुष्य अन्य प्राणियों से वरिष्ठ भी है और उनकी तुलना में असाधारण योग्यताओं एवं प्रतिभाओं का धनी भी है। यही कारण हैं जिनके कारण मानवीय दायित्वों में उत्कृष्टता, शालीनता, सभ्यता एवं सुसंस्कारिता नैसर्गिक रूप से समाविष्ट हो गए हैं। स्वतंत्र-स्वच्छंद दिखते हुए भी मनुष्य को अनेकों व्यक्तिगत, नीतिगत एवं सामाजिक मर्यादाओं, अनुशासन का पालन करना ही पड़ता है।

जहाँ एक ओर उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह मर्यादाओं का परिपालन करे तो वहीं अनेकों ऐसे कुकृत्य हैं, जिनके विषय में उससे यह अपेक्षा है कि वह उनसे दूर रहे। उनको अपनाने पर कानून से लेकर कर्म व्यवस्था, सभी उसके ऊपर अपना शिकंजा कसते दिखाई पड़ते हैं। व्यक्ति शारीरिक रूप से समर्थ हो, बलवान हो या बौद्धिक क्षमता का धनी हो अथवा आर्थिक रूप से संपन्न हो—इन सबके आधार पर सुख-सुविधा की प्राप्ति संभव है। सामाजिक रूप से इनका मूल्य एक निश्चित सीमा तक ही है—उसके बाद इनका भी बहुत महत्त्व नहीं रह जाता है।

व्यक्ति यदि अशिष्ट हो, असभ्य हो, दुर्गुणी हो, दुर्व्यसनी हो तो ऐसे में वह स्वयं के अतिरिक्त दूसरे अनेकों के लिए कष्ठ-कठिनाई का कारण बनता है। इसी को कुछ ऐसे भी कहा जा सकता है कि इस संसार में मनुष्य जैसे दिखने वाले, उसकी तरह क्रियाकलाप करने वालों की संख्या अरबों में है, पर यदि उनके भीतर मानवोचित उत्कृष्टता का समावेश न हो सका तो ऐसा समझना चाहिए कि वे धरती पर भार बनने के अतिरिक्त और कुछ न कर सके।

यदि मनुष्य सुविधासंपन्न हो गया, परंतु संस्कारों की दृष्टि से शून्य बना रहा और उसके चिंतन में निकृष्टता ही बसती रही तो ऐसा जीवन कलंक के समान ही रह जाता है। शारीरिक यात्रा की दृष्टि से देखें तो मनुष्य की जीवनयात्रा भी अन्य प्राणियों की तरह ही होती है। पैदा होते ही किसी में सभ्यता, शिष्टता आ जाती हो—ऐसा कहाँ होता है ? मात्र पेट भर लेने की एवं प्रजनन कर लेने की क्षमता ही नैसर्गिक रूप से प्राप्त हो पाती है। ऐसे मनुष्य को अनगढ़ ही कहा जाता है। उसके अंदर सुगढ़ता का समावेश तब होता है, जब उसका चिंतन, व्यवहार, आचरण, मर्यादाएँ इत्यादि मानवोचित गरिमा के अनुरूप कार्य करते दिखाई पड़ते हैं।

स्मरण रखने योग्य तथ्य यही है कि मनुष्य असामान्य है। उसे परमात्मा का वरदपुत्र कहकर पुकारा जाता है और ऐसा कहने के पीछे का आशय यह है कि उसे यह दायित्व सौंपा गया है कि परमात्मा के इस विश्व उद्यान को अधिक सुंदर-समुन्नत बनाने, उत्तम-उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करे। इसीलिए जिसे मानवोचित गरिमा कहकर पुकारा जाता है, वह सुसंस्कारिता के साथ जुड़ी हुई है। इसी के आधार पर व्यक्ति सराहना या भर्त्सना का कारण बनता है। परमपूज्य गुरुदेव ने अनेक स्थानों पर ऐसा कहा व लिखा है कि मनुष्य भटका हुआ देवता है। यदि उसके जीवन के भटकावों पर नियंत्रण लाया जा सके तो वह आत्मसंतोष एवं लोक-कल्याण के संसार की संरचना कर सकता है।

सही कहा जाए तो मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप ही है। स्वर्गीय या नारकीय परिस्थितियों का निर्माण वह अपनी मनोभूमि के आधार पर ही करता है। यदि उसके जीवन को सही दिशा मिल सके एवं वह सही राह पर सही रीति-नीति अपनाते हुए चल सके तो वह स्वयं का उद्धार करने के अतिरिक्त अनेकों को भवसागर से पार करने का कारण बन सकता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में उत्कृष्टता के समावेश की इसी प्रक्रिया को भारतीय विचारकों ने संस्कार परंपरा का नाम दिया था।

यदि उसे उसी उद्देश्य के साथ लागू किया जा सके, जिस उद्देश्य के साथ उस परंपरा की स्थापना की गई तो उसके प्रभाव एवं परिणाम अत्यंत उपयोगी, महत्त्वपूर्ण एवं श्रेयस्कर हो सकते हैं। प्राचीनकाल में इस साधारण-सी दिखने वाली प्रक्रिया ने ही जनमानस के परिष्कार का महान कार्य संभव कर दिखाया था। व्यक्तियों का समुदाय ही तो समाज कहलाता है और व्यक्ति का विकास, उसकी अपनी मन:स्थिति के आधार पर ही तो निर्धारित होता है। अंत:करण की गरिमा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का आधार बनती है। इसीलिए अंत:करण पर छा रही मलिनता को समय रहते स्वच्छ-निर्मल बनाने का कार्य संस्कार-प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता रहा था।

यही कारण था कि सुसंस्कारिता का संवर्द्धन मानवीय विकास का अभिन्न अंग माना गया। इसी आशय को ध्यान में रखकर षोडश संस्कारों की परंपरा बनाई एवं चलाई गई थी। आज भी व्यक्तित्व को निखारने के लिए, प्रतिभा को उभारने के लिए एवं मनुष्य की गरिमा का स्तर ऊँचा करने के लिए संस्कारपद्धति की उपयोगिता यथावत् है।

अब बात संस्कारों की आती है तो इनका उद्देश्य मात्र कर्मकांड का क्रियाकृत्य करना नहीं है। संकेतों को क्रिया रूप में उतारने के लिए परिस्थितियों के अनुरूप बहुत कुछ सोचने एवं करने की आवश्यकता पड़ती है। ये समझने एवं बताने के लिए गंभीर आध्यात्मिक सोच की आवश्यकता वर्तमान समय में पड़ती है। इसी को ध्यान में रखकर परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज को युग संस्कारपद्धति के पुनर्जीवन का केंद्र बनाया। यही कारण था कि उन्होंने एक परिष्कृत संस्कारपद्धति का निर्धारण किया। इसमें पहला महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि संस्कारों की संख्या को घटाया जाए।

पूज्य गुरुदेव ने कहा कि भारत में औसतन 5-6 व्यक्तियों के परिवार होते हैं, यदि प्रत्येक व्यक्ति 16 संस्कार करे तो 96 के करीब संस्कार होते हैं और इतने सारे आयोजनों को संपन्न कर पाना एक औसत भारतीय परिवार के लिए लगभग नामुमकिन होता है। यह सोचकर उन्होंने प्रसूति के समय के संस्कारों में से जातकर्म इत्यादि को हटाकर पुंसवन के रूप में एक महत्त्वपूर्ण संस्कार करने को कहा। साथ ही नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन इत्यादि संस्कारों का समन्वयन करने को कहा।

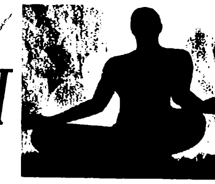
आवश्यक एवं बड़े संस्कारों में परमपूज्य गुरुदेव ने तीन को महत्त्वपूर्ण माना—यज्ञोपवीत, विवाह एवं वानप्रस्थ। इन तीनों को तीन महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों का निमित्त कहा जा सकता है। यज्ञोपवीत संस्कार एक तरह से दूसरे जन्म या द्विजत्व का प्रतीक है। मानवता की गरिमा-सभ्यता तथा संस्कृति इसी से आते हैं और इन्हें ही दूसरी भाषा में लोक व्यवहार तथा दृष्टिकोण में समाहित उत्कृष्टता भी कहा जा सकता है।

इस संस्कार के माध्यम से बालक के अतिरिक्त उपस्थित समुदाय को यह चिंतन प्रदान करने का भाव है कि इन गुणों का अनुपालन कैसे किया जाए? देवालयों की साक्षी में, अग्निदेव के सान्निध्य में, श्रद्धासिक्त वातावरण में तथा वरिष्ठ-सम्माननीय व्यक्तियों की उपस्थिति में जब ये प्रतिज्ञाएँ बालक धारण करता है तो जीवन में नई संभावनाओं का पथ निश्चित रूप से प्रशस्त होता है।

आवश्यक संस्कारों के क्रम में परमपूज्य गुरुदेव ने यज्ञोपवीत के बाद विवाह को सम्मिलित किया। विवाह का पवित्र संस्कार एक तरह से दो आत्माओं का एकीकरण है। सम्मिलित जीवन को कैसे, किन आदर्शों के साथ जिया जाए, एकदूसरे के जीवन क्रम में अधिक-से-अधिक सहायक कैसे बना जाए, गृहस्थ जीवन को तपोवन कैसे बनाया जाए—इन सारी शिक्षाओं को आत्मसात् करने की प्रेरणा देने के लिए विवाह संस्कार का क्रम संपन्न किया जाता है। इसके बाद परमपूज्य गुरुदेव ने वानप्रस्थ संस्कारों का क्रम आरंभ किया।

वर्णाश्रम व्यवस्था में आधा जीवन निजी और आधा जीवन पारमार्थिक प्रयोजनों में नियोजित होना चाहिए। इसके सुनिश्चित अनुपालन से ही सुयोग्य, अनुभवी, निस्पृह, कार्यकर्त्ता समाज को प्राप्त हो जाते थे, इसी के कारण जनमानस में उत्कृष्टता का बोध करने वाली चेतना विद्यमान रहती थी। परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज को युगतीर्थ का नाम प्रदान किया, ताकि इन सारे संस्कारों का सामयिक दृष्टि से प्रतिपादन करते हुए इस महत्त्वपूर्ण विधा एवं विद्या का पुनर्जीवन संभव हो सके। परमपूज्य गुरुदेव ने प्रथम वर्ग के संस्कारों में पुंसवन, नामकरण, मुंडन को रखा, द्वितीय वर्ग में यज्ञोपवीत, विवाह और वानप्रस्थ को स्थान दिया तो वहीं तीसरे वर्ग में अंत्येष्टि, श्राद्ध-तर्पण इत्यादि संस्कारों को नियोजित किया। आज के परिप्रेक्ष्य में इस संस्कार परंपरा को गतिशील रखना हमारी महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी हो जाती है। ❑

अध्यात्म: जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता



अध्यात्म, जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता है; क्योंकि यही हमारे वास्तविक स्वरूप से हमारा परिचय कराता है। वह स्वरूप जो जरा-मरण से रहित, शोकमुक्त, नित्य और अविनाशी मूलसत्ता है; जिसका ज्ञान होने पर फिर मनुष्य हर तरह के भय, शोक, चिंता और मरण से मुक्त हो जाता है, अजर-अमर होकर चिरअविनाशी पद को प्राप्त कर लेता है।

इस नाशवान मानव जीवन में उस आत्मतत्त्व की उपलब्धि से बड़ी और ऊँची उपलब्धि और क्या हो सकती है? हर व्यक्ति इसकी खोज में जीवन व जगत् के मर्म को समझने के बजाय बाह्य आकर्षण में ही उलझ जाता है। इसी गोरखधंधे में पड़ा वह संसार के क्षणभंगुर सुख के पीछे भागता फिरता है और अंततः अशांति व असंतोष ही उसके पल्ले पड़ते हैं। इसी खोज में जरावस्था आ जाती है, फिर मृत्यु दस्तक दे जाती है और यह बहुमूल्य जीवन यों ही व्यर्थ नष्ट हो जाता है।

यदि इस अवधि में आत्मा की सुध ली होती तो जरावस्था एक उत्सव बनती और मृत्यु का भी भय नहीं रहता और साथ ही जीते जी उस आत्मतत्त्व को व्यक्ति पा जाता, जिसके बाद फिर पूरा जीवन आनंदस्वरूप बन जाता। वास्तव में एक व्यक्ति संसार में नाना सुख-भोग, साधन-संपत्ति व ऐश्वर्य का जो संग्रह करता है, उसके पीछे उद्देश्य आनंद की प्राप्ति का ही रहता है, लेकिन इसे कौन उपलब्ध कर पाता है—यह विचारणीय है।

सुखभोग में आकंठ डूबकर बड़े-से-बड़े पद को पाकर या अकूत धन-संपति के वैभवशाली जीवन के बाद भी क्या व्यक्ति वास्तव में सुखी हो पाता है? क्या आनंद का लक्ष्य पूरा हो जाता है? इसका उत्तर ढूँढ़ने पर अधिकतर न में ही जवाब मिलता है। यदि इनमें ही कुछ सारतत्त्व होता तो इतने सारे धनकुबेर क्यों रोते-कलपते फिरते? निद्रा के लिए नींद की गोलियाँ खाते, अपने मानसिक उपचार के लिए मनःचिकित्सकों का चक्कर लगाते तथा जीवन में सुख-शांति-आनंद के लिए साधु-फकीरों की खोज करते।

ऐसे ही वासना की आग में अपने जीवन की आहुति डालकर कौन तृप्ति व स्थायी सुख-शांति को प्राप्त हुआ है? आश्चर्य नहीं कि पश्चिमी जगत् सुखभोग एवं वासना की आँधी में असफल खोज के शिखर पर अध्यात्म की ओर उन्मुख हुआ है। यदि इंद्रियभोगों में ही आनंद होता तो वह उसी में डूबा रहता। अभी हमारा समाज सुखभोग की इस आँधी के दौर से गुजर रहा है। ऐसे ही नाम की खुमारी, महत्त्वाकांक्षा का गुब्बारा भी आएदिन फूटता रहता है। जो रौब-रुतबा पद में बने रहने तक था, रिटायर होते ही उसकी हवा निकल जाती है—वह चाहे किसी भी तरह के सत्ता शिखर पर क्यों न बैठा हो।

बड़े-से-बड़ा पदाधिकारी भी स्थायी शांति, आनंद व जीवन के सही दिशाबोध की खोज में साधु-संतों, फकीरों व किसी समर्थ के आशीर्वाद की आकांक्षा रखता है। मनुष्य वासना, तृष्णा, लोकैषणा की इन वंचनाओं में दिन-रात भाग-दौड़ क्यों करता है? पूज्य गुरुदेव के शब्दों में इसके दो कारण हैं—पहला तो यह कि जब वह दिन-रात इनको लक्ष्य बनाकर इन्हीं का चिंतन-मनन व ध्यान करता रहता है तो स्वाभाविक रूप में इनसे आसक्ति, ममता तथा मोह हो जाते हैं। धीरे-धीरे इनका अभ्यास इतना दृढ़ हो जाता है कि वे नागपाश की भाँति छूटने का नाम नहीं लेते। लगता है कि यही जीवन का सार हैं, इनके बिना जीवन संभव नहीं।

इस तरह युग-युग, जन्म-जन्म तक यह अभ्यास छूटने का नाम नहीं लेता। यह स्वभाव बन जाता है, संस्कारों के रूप में चित्त की गहराइयों में अपनी जड़ें जमाए रहता है। बुद्धि से इनकी निस्सारता समझ आते हुए भी, मन में इनकी इच्छा, तलब व रस बने रहते हैं। दूसरा, मन व संसार की माया के परे जो अविनाशी, सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मतत्त्व है, उसका परिचय नहीं हो पाता। जिसको कोई जानता नहीं, उसके प्रति आकर्षण का प्रश्न ही नहीं उठता। आकर्षित तो उसके प्रति होता है, जिसका कुछ ज्ञान हो, जिससे पहचान हो।

सांसारिक भोग और वैभव के परे भी कोई आनंद है, यदि यह विश्वास जग जाए तो फिर व्यक्ति उसके प्रति

आकर्षित हो उस ओर कदम बढ़ाने लगता है। यह मानवीय स्वभाव है कि दो चीजों में से चयन उसी का होता है, जो मनुष्य को अधिक महत्त्वपूर्ण लगती है।

सांसारिक सुख-वैभव सामने व प्रत्यक्ष होने तथा उन्हें पा लेने की संभावना दिखने के कारण ही व्यक्ति उन्हें हस्तगत करना चाहता है और उनके पीछे दौड़-भाग करता है— जिससे उसे आनंद मिल सके, लेकिन इस प्रयास में वह असफल ही रहता है और बार-बार वे ही प्रयास करता चला जाता है।

आनंद की आकांक्षा में उसे कुछ सुख अवश्य मिलता है, लेकिन आनंद नहीं। आत्मज्ञान न होने के कारण माया के छलावों में भटकने की विवशता बनी ही रहती है और पूरा जीवन इसी दौड़ में बीत जाता है। यौवन ढलते ही जरावस्था आ जाती है तथा संसार के भोग फीके पड़ने लगते हैं। यदि इच्छा भी हो, तो भी बात नहीं बनती।

उस समय भोगी में इन भोगों को भोगने की भी क्षमता नहीं रह जाती व साथ में रोग आ भी जाएँ तो फिर इनका झूठा आनंद लेने लायक भी वह नहीं रह जाता। तब इनका ध्यान उसे शैल की तरह सालता है। यदि मनुष्य प्रारंभ से ही इनको निस्सार मानते हुए उनसे आसक्ति नहीं जोड़ता, उनका व्यसन नहीं पालता तो बहुत सीमा तक वह इनके दु:ख, क्लेश व संताप से बच जाता, लेकिन अज्ञानता के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता।

आनंद के लिए जिन सांसारिक उपलब्धियों, भोग, वैभव को वह आधार बनाता है उनमें क्षणिक सुख के साथ इनकी अस्थिरता, वियोग व परिवर्तनशीलता के साथ इनके विनाश की संभावना उसे बेचैन व दु:खी करती है। पूरा जीवन इनको सँभालने में ही बीत जाता है और एक दिन स्वयं इस शरीर को छोड़कर अनजान दिशा में चले जाने की बारी आती है।

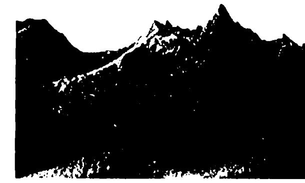
जिनको अपनी नादानी में वह सत्य मान बैठा था। वे ही स्वप्न की तरह असत्य सिद्ध होते हैं और इनमें आभासित आनंद भी कृत्रिम प्रकाश की ही भाँति निकलता है। समय पर सुध न ले पाने के कारण अंतत: विषाद का सघन अँधेरा ही नियति बन जाती है और फिर सिर पटकने व पश्चात्ताप करने के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं बचता।

जीवन के मर्मज्ञ ऋषियों ने संसार के नश्वर सुख व सिद्धियों के परे अविनाशी एवं अपरिवर्तनशील शाश्वत आनंद के स्रोत आत्मा को खोजने व पाने का महत्त्व शास्त्रों में पग-पग पर प्रतिपादित किया था। आत्मा सत्य है, नित्य है, ज्योतिस्वरूप और आनंदमयी है। उसको पा लेने के बाद फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता और इसको जान लेने के बाद फिर कुछ जान लेना नहीं रहता। मनुष्य के पुरुषार्थ की सार्थकता सुखों के अनावश्यक उपभोग में नहीं, बल्कि आत्मा को प्राप्त करने के प्रयासों में है।

वास्तव में संसार व इसका जो सुख, सौंदर्य तथा वैभव हमें बाहर प्रतीत होता है, उसका भी अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं। वह आत्मा के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है, जो जीवन का परम सत्य है। आत्मा के प्रकाश के कारण ही यह जीवन व जगत् का विस्तार आभासित होता है। आत्मा के पटल पर ही इस संसार और जीवन का छाया नाटक बनता-बिगड़ता रहता है। संसार और कुछ भी नहीं, केवल आत्मा की अभिव्यक्ति भर है। इसके पृथक जो कुछ भी है, वह असत्य है, भ्रमपूर्ण है और अग्राह्य है। वेद-उपनिषद्, गीता व अध्यात्म शास्त्रों के महावाक्यों में यही प्रतिपादन मिलता है। **'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय'** में संसार से ऊपर उठकर आत्मा की ओर बढ़ चलने का आवाहन किया गया है; क्योंकि ज्योतिस्वरूप आत्मा ही शिवरूप है, अमृतस्वरूप है, तात्त्विक रूप में स्वयं परमात्मा, ब्रह्म है।

यह कल्याणकारी आत्मा ही प्राप्य है और आत्मज्ञान की प्राप्ति इस मनुष्य जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। विवेकशीलता इसी में है कि मनुष्य आवश्यकता भर सांसारिक कर्त्तव्य कर्मों को करता रहे व शेष समय आत्मअनुसंधान में लगाए। परमपूज्य गुरुदेव ने इसे ही व्यावहारिक अध्यात्म कहकर इसका प्रतिपादन किया था और उपासना, साधना व आराधना की त्रिवेणी के रूप में इसका सम्यक मार्ग दिखाया है। जिसके मूल में आत्मतत्त्व की प्रधानता ही प्रतिपादित है। जिसके आचरण से आत्मजिज्ञासु संसार में रहता हुआ भी उसकी अँधेरी वीथियों में नहीं भटकता। उसकी सच्ची जिज्ञासा प्रकाश का काम करती है और वह माया के अंधकार के बीच भी अपने आध्यात्मिक लक्ष्य का संधान करता हुआ अपने जीवन के परम उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है। ❑

टूटते हिमखंड में विध्वंस की आहट छिपी है



हिमालय में जलधाराओं के अनेकों स्रोत हैं। गंगा, यमुना जैसी नदियाँ भी इन्हीं पर्वतराज की गोद में खेलकर पल्लवित होती हैं, किंतु वर्तमान समय में टूटते एवं पिघलते हिमखंड पर्यावरण के लिए गंभीर संकट है। बढ़ते तापमान के कारण ये हिमखंड टूटते जा रहे हैं। हिमखंडों से उद्गम लेने वाली नदियों के सूखने का संकट इस कारण बढ़ रहा है। इनके प्रभाव से समुद्र का जलस्तर बढ़ता जा रहा है। गोमुख के विशाल हिमखंड का एक हिस्सा टूटकर हाल ही में भागीरथी यानी गंगा नदी के उद्गमस्थल पर गिरा था।

हिमालय के हिमखंडों का इस तरह से टूटना एक अशुभ संकेत है। इन टुकड़ों को गोमुख से 18 किलोमीटर दूर गंगोत्तरी से भागीरथी के तेज प्रवाह में बहते देखा गया। गंगोत्तरी राष्ट्रीय उद्यान के वनाधिकारी ने इस हिमखंड के टुकड़ों के चित्र लिए और टूटने की पुष्टि की। ग्लेशियर वैज्ञानिक इस घटना की पृष्ठभूमि में कम बरफबारी होना बता रहे हैं। यदि कालांतर में धरती पर गरमी इसी तरह बढ़ती रही और ग्लेशियर क्षरण होने के साथ टूटते भी रहे तो इनका असर गंगा नदी के अस्तित्व पर पड़ना तय है; क्योंकि गंगा केवल गोमुख से निकलने वाली जलधारा मात्र नहीं है।

गरमाती पृथ्वी की वजह से हिमखंडों के टूटने का सिलसिला आगे भी जारी रहा तो समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा, जिससे कई लघुद्वीप और समुद्रतटीय शहर डूबने लग जाएँगे। स्पष्ट है कि हिमखंड का टूटना प्रकृति की एक खतरनाक चेतावनी है।

इस संकेत से सचेत होने की जरूरत है। अब तक हिमखंडों के पिघलने की जानकारियाँ तो आती रही हैं, किंतु किसी हिमखंड के टूटने की घटना अपवादस्वरूप ही सामने आती है; हालाँकि कुछ समय पहले ही ऑस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों की ताजा अध्ययन रिपोर्ट से पता चला था कि ग्लोबल वार्मिंग से बढ़े समुद्र के जलस्तर ने प्रशांत महासागर के पाँच द्वीपों को जलमग्न कर दिया है।

यह एक संयोग था कि इन द्वीपों पर मानव बस्तियाँ नहीं थीं, इसलिए दुनिया को विस्थापन और शरणार्थी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। दुनिया के नक्शे से गायब हुए ये द्वीप थे—केल, रेपिता, कालातिना, झोलिम एवं रेहना। पापुआ न्यू गिनी के पूर्व में स्थित ये द्वीप सालोमन द्वीप समूह का हिस्सा थे।

पिछले दो दशकों में इस क्षेत्र में समुद्र के जलस्तर में सालाना 10 मिलीमीटर की दर से बढ़ोत्तरी हो रही है। ग्रीनलैंड के पिघलते ग्लेशियर समुद्री जलस्तर को कुछ सालों के भीतर ही आधा मीटर तक बढ़ा सकते हैं। बदलते पर्यावरण का यह भयावह संकेत बता रहा है कि हमें एक ऐसी दुनिया में जीने की तैयारी कर लेनी चाहिए, जहाँ सब कुछ हमारे प्रतिकूल होगा।

गोमुख के द्वारा गंगा के अवतरण का जलस्रोत बने हिमालय पर जो हिमखंड हैं, उनका टूटना भारतीय वैज्ञानिकों का मानना है कि कम बरफबारी होने और ज्यादा गरमी पड़ने की वजह से हिमखंडों में दरारें पड़ गई थीं, इनमें बरसाती पानी भर जाने से हिमखंड टूटने लग गए। अभी गोमुख हिमखंड का बाईं तरफ का हिस्सा टूटा है। उत्तराखंड के जंगलों में लगी आग की आँच ने भी हिमखंडों को कमजोर करने का काम किया है। आँच और धुएँ से बरफीली शिलाओं के ऊपर जमी कच्ची बरफ तेजी से पिघलती चली गई। इस कारण दरारें भर नहीं पाईं। अब वैज्ञानिक यह आशंका भी जता रहे हैं कि धुएँ से बना कार्बन यदि शिलाओं पर जमा रहा तो भविष्य में नई बरफ जमना मुश्किल होगी।

भोजवासा में तीन वैज्ञानिकों का एक दल पहले से ही इन हिमखंडों के अध्ययन में लगा है, लेकिन वह यह अनुमान लगाने में नाकाम रहा है कि हिमशालाओं में पड़ी दरारें इन्हें पृथक भी कर सकती हैं। हिमालयी हिमखंड का टूटना तो नई बात है, लेकिन भूमंडलीकरण के बाद प्राकृतिक संपदा के दोहन पर आधारित जो औद्योगिक विकास हुआ है, उससे उत्सर्जित कार्बन ने इनके पिघलने की तीव्रता को बढ़ा दिया है।

एक शताब्दी पूर्व भी हिमखंड पिघलते थे, लेकिन बरफ गिरने के बाद इनका दायरा निरंतर बढ़ता रहता था। इसीलिए गंगा और यमुना जैसी नदियों का प्रवाह बना रहा, किंतु 1950 के दशक से ही इनका दायरा तीन से चार मीटर प्रतिवर्ष घटना शुरू हो गया है। सन् 1990 के बाद यह गति और तेज हो गई, इसके बाद से गंगोत्तरी के हिमखंड प्रत्येक वर्ष 5 से 20 मीटर की गति से पिघल रहे हैं। लगभग यही स्थिति उत्तराखंड के पाँच अन्य हिमखंड सत्तोपंथ, मिलाम, नीति, नंदादेवी और चोराबाड़ी की है।

भारतीय हिमालय में कुल 9,975 हिमखंड हैं। इनमें 900 उत्तराखंड के क्षेत्र में आते हैं। इन हिमखंडों से भी ज्यादा नदियाँ निकली हैं जो देश की 40 प्रतिशत आबादी को पेय, सिंचाई व आजीविका के अनेक संसाधन उपलब्ध कराती हैं, किंतु हिमखंडों के पिघलने और टूटने का यही सिलसिला बना रहा तो देश के पास ऐसा कोई उपाय नहीं है कि वह इस 50 करोड़ आबादी को रोजगार व आजीविका के वैकल्पिक संसाधन दे सके।

बढ़ते तापमान को रोकना अकेले भारत के बस की बात नहीं है, तब भी हम अपने हिमखंडों को टूटने और पिघलने से बचाने के उपाय औद्योगिक गतिविधियों को विराम देकर एक हद तक कर सकते हैं। पर्यटन के रूप में मानव समुदायों की जो आवाजाही बढ़ रही है, उन पर भी अंकुश लगाने की जरूरत है। इसके अलावा वाकई हम अपनी बरफीली शिलाओं को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमारी ज्ञान-परंपरा में हिमखंडों की सुरक्षा के जो उपाय उपलब्ध हैं, उन्हें भी महत्त्व देना होगा।

बढ़ते तापमान के चलते आर्कटिक से भी हिमखंडों के पिघलने और बरफ के कम होने की खबर आई है। **यूएस नेशनल आइस डाटा सेंटर** ने उपग्रह के जरिए जो चित्र हासिल किए हैं, उनसे ज्ञात हुआ है कि 1 जून, 2016 तक यहाँ 11.1 मिलियन वर्ग किमी० क्षेत्र में बरफ थी, जबकि पिछले दशक में इसी समय तक यहाँ औसतन 12.7 मिलियन वर्ग किमी० क्षेत्र में बरफ थी। 1.6 मिलियन वर्ग किमी० वर्ग क्षेत्र में यह जो समुद्री बरफ कम हुई है, यह क्षेत्रफल इंग्लैंड को 6 बार जोड़ने के बाद बनने वाले क्षेत्रफल के बराबर है।

पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव के आस-पास के इलाकों को आर्कटिक कहा जाता है। इस क्षेत्र में आर्कटिक महासागर, कनाडा का कुछ हिस्सा, डेनमार्क का ग्रीनलैंड, रूस का एक हिस्सा, संयुक्त राज्य अमेरिका का अलास्का, आइसलैंड, नॉर्वे, स्वीडन और फिनलैंड शामिल हैं। भारत से यह इलाका 9,863 किमी० दूर है। रूस के उत्तरी खाड़ी में समुद्री बरफ लगातार लुप्त हो रही है।

इस क्षेत्र में समुद्री गरमी निरंतर बढ़ने से अनुमान लगाया जा रहा है कि कुछ सालों में यह बरफ भी पूरी तरह खतम हो जाएगी। कैंब्रिज विश्वविद्यालय के पोलर ओशन फिजिक्स समूह के मुख्य प्राध्यापक पीटर वैडहैम्स का दावा है कि आर्कटिक क्षेत्र के केंद्रीय भाग और उत्तरी क्षेत्र में बरफ अगले साल तक पूरी तरह गायब हो जाएगी। अभी तक आर्कटिक में 900 घन किमी. बरफ पिघल चुकी है। इसी कारण समय रहते इस गंभीर समस्या का सार्थक समाधान खोज लेने की आवश्यकता है। ❑

वर्षा तेज हो रही थी, जिससे बाँध में एक छेद हो गया। राज्य के डूब जाने की आशंका को देखकर एक आदमी आगे बढ़ा और जहाँ से बाँध टूट रहा था, वहाँ लेट गया। थोड़ी देर में ठंढ से उसका शरीर अकड़ गया तो उसे लोगों ने उठाकर आग के समीप पहुँचाया और बाँध पर उसकी जगह पर एक दूसरा व्यक्ति लेट गया। सारा गाँव इसी तरह पानी को तब तक रोके रहा, जब तक सरकारी कर्मचारी नहीं आ गए। इंजीनियर ने ग्रामीणों का त्याग देखकर कहा—"जहाँ तुम लोगों के जैसे त्यागी व साहसी लोग हों, उस राज्य का कभी अहित नहीं हो सकता।" निष्ठासंपन्न साधनहीन हों तो भी कार्य साध लेते हैं।

पर्व विशेष (गायत्री जयंती)

उपासना का मर्म



परमपूज्य गुरुदेव को इस युग के विश्वामित्र की संज्ञा दी गई है; क्योंकि उन्होंने विलुप्त हो रही या यों कहें कि विलुप्त हो चुकी गायत्री महाविद्या को न केवल पुनर्जाग्रत किया, वरन उसे सर्वसुलभ, यहाँ तक कि विश्वव्यापी बना दिया। गायत्री का महामंत्र समष्टि को सम्यक दिशा में ले जाने वाला, सन्मार्ग के पथ पर चलने के लिए प्रेरित करने वाला मंत्र है। सद्बुद्धि की प्रेरणा प्रदान करने के कारण ही माँ गायत्री को वेदमाता कहा गया है।

माँ गायत्री की चेतना ही वह स्फुरणा है, जो ब्रह्मा जी के मुख से चारों वेदों के रूप में निस्सृत हुई। यही कारण है कि उन्हें वेदमाता-विश्वमाता कह करके पुकारा जाता है। इस एक महामंत्र के भीतर समस्त वेद-शास्त्रों का एवं उनकी शिक्षाओं का सार समाहित है। नौ शब्दों एवं चौबीस अक्षरों में वेदों के द्वारा प्रदत्त सभी महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं के मूलतत्त्व बीजरूप में आ गए हैं। जब वे बीज अंकुरित होते हैं, पुष्पित एवं पल्लवित होते हैं तब वे विस्तृत वैदिक वाङ्मय के रूप में सामने प्रकट होकर के आते हैं, जिसे वैश्विक ज्ञान-संपदा का जन्मदाता कहा जा सकता है।

यही कारण रहा कि परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री महाविद्या की साधना को जनसामान्य तक पहुँचाया। इस एक चिंतन को घर-घर तक पहुँचाने का माध्यम वे बने कि कैसे इस एक मंत्र से इस संसार में सभी कुछ पाया जा सकता है। ये गायत्री महाविद्या देवशक्तियों से लेकर ऋषिसत्ताओं के लिए उपास्य रही हैं और मानवता के सम्मुख वर्तमान परिस्थितियों में प्रस्तुत भीषण चुनौतियों से मुक्ति दिला पाने का कार्य मात्र इसी एक साधनापद्धति से संभव है।

गायत्री ही अमृत है, पारस है, कल्पवृक्ष है—इसका प्रत्येक अक्षर शक्ति का स्रोत है एवं अपरिमित शक्ति का भंडार है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि सही ढंग से की गई गायत्री-उपासना जीवन में चमत्कारिक परिणाम उत्पन्न करती-ही-करती है।

यह भी सत्य है कि अनेक साधक गायत्री महाविद्या के इस स्वर्णिम पथ पर चलने का प्रयत्न करते हैं; परंतु तब भी वे उन लाभों को प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं, जो परमपूज्य गुरुदेव या अन्य उच्चस्तरीय साधकों को प्राप्त होते हैं। निश्चित रूप से ऐसे में कुछेक के मन में शंका होती है कि कहीं हम गलत पथ पर तो नहीं चल रहे? कहीं कुछ बदलने की आवश्यकता तो नहीं है? इस साधनापद्धति में कहीं कोई खोट तो नहीं है?

ऐसे प्रश्न अनेक परिजनों के मन में चला करते थे और समय-समय पर वे उन प्रश्नों को लेकर पूज्य गुरुदेव के पास चले भी जाया करते थे। मध्य प्रदेश के एक कार्यकर्त्ता एक बार कुछ ऐसे ही प्रश्नों को लेकर पूज्य गुरुदेव के पास पहुँचे और उनके सामने उन्होंने अपनी जिज्ञासा रखी। वे बोले—"गुरुदेव! मैं नित्य 44 मालाएँ करता हूँ। पूजा-उपासना खूब करता हूँ, पर जीवन में कोई भी आध्यात्मिक प्रगति होती दिखाई नहीं पड़ती। इसके पीछे क्या कारण है?"

पूज्य गुरुदेव बोले—"बेटा! मालाएँ ज्यादा कर लेना ही उपासना नहीं है। सच्ची उपासना—जीवन-साधना को कहा जाता है। यही वह मार्ग है, जो व्यक्ति को मानव से महामानव के स्तर पर पहुँचाता है। अनेकों से यही भूल हो जाती है कि वे पूजा-पाठ को ही उपासना मान लेते हैं और उतने पर ही उपासना की इतिश्री करके बैठ जाते हैं। यदि व्यक्ति इतने भर से यह सोचता है कि परब्रह्म परमात्मा तक उसकी पहुँच हो गई तो यह एक बड़ी भूल के सिवा और कुछ भी नहीं है।"

पूज्यवर ने समझाया—"ईश्वर या देवता छोटे स्तर के थोड़े हैं कि उन्हें कोई नैवेद्य, नारियल चढ़ा देगा तो खुश हो जाएँगे। जो सारी सृष्टि के नियंता हैं, उन्हें थोड़े से मिष्टान्न से क्या संबंध है? ऐसी मान्यता बनाने वाले देवताओं के स्तर को जानते नहीं हैं। वे उनको बच्चों की तरह नासमझ समझते हैं और ये समझते हैं कि ऐसे खिलवाड़ करके उनको बरगलाया या फुसलाया जा सकता है। आम आदमी इसी भ्रांति का शिकार है।"

पूज्य गुरुदेव ने आगे कहा—"बेटा! ऐसी अनेकों मान्यताएँ समाज में प्रचलन में हैं, पर जरा सोच के देखो कि

यदि बाह्य आडंबर से परमेश्वर मिला करते तो मंदिरों वाली भीड़ और पूजा-पाठ वाली मंडली अब तक कब की आसमान के तारे तोड़ लाने में सफल हो गई होती। कम-से-कम व्यक्ति इतना तो सोचे कि जो वस्तु जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतनी ही मूल्यवान भी होनी चाहिए। सारी सृष्टि के अधिपति का मूल्य इतना कम कैसे हो सकता है ?''

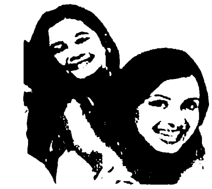
उन कार्यकर्त्ता के मुख से निकला—''फिर हम क्या करें गुरुदेव ?'' गुरुदेव बोले—''बेटा! पहला सिद्धांत स्मरण रखो कि तुम्हें भगवान का भक्त बनना पड़ेगा और तदनुरूप होने का प्रयत्न करना पड़ेगा। ईंधन का मूल्य ज्यादा थोड़े ही होता है, पर आग से जुड़ते ही वह कैसा प्रखर हो जाता है। आग ईंधन नहीं बनती—ईंधन को ही आग बनना पड़ता है। पूजा-पाठ से ज्यादा जरूरी भावप्रधान उपासना है, जिसमें भगवान के इशारों पर जीवन को अर्पण करने का ही भाव प्रधान है।''

स्नेहभरी दृष्टि से उन कार्यकर्त्ता को निहारते हुए पूज्यवर ने कहा—''दूसरा सिद्धांत स्मरण रखना कि जीवन में निष्ठा को पैदा करना। निष्ठा का अर्थ है—संकल्प, धैर्य, साहस, पराक्रम, तप, कष्ट को सहन करने की क्षमता। जिस प्रकार आँवे से निकले बरतनों को कुम्हार ठोंक-ठोंककर देखता है कि ये कहीं से फूटे तो नहीं हैं—उसी प्रकार भगवान बार-बार साधक की परीक्षा लेकर के देखते हैं कि कहीं कदम डगमगा तो नहीं गए। इस क्रम में सफलता प्राप्त होने पर उपासना सफल होती है।''

पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी से उन कार्यकर्त्ता के समस्त प्रश्नों का समाधान हो चुका था। उन्होंने महसूस किया कि साधना की सफलता श्रद्धा, निष्ठा के पथ पर चलने से ही हस्तगत हो पाती है। माला की संख्या बढ़ा देना मात्र साधना नहीं है, वरन जीवन में उपासना के तत्त्वदर्शन को समाहित कर लेना ही साधना है। आत्मा का परमात्मा में विलय ही उपासना का मूलमंत्र है एवं उसी पथ पर चलना साधक की साधना की सफलता का आधार है। ❑

महर्षि कण्व अपने शिष्य कौत्स को साथ लेकर भ्रमण को निकले। मार्ग में उन्हें आश्रम से संबंधित कुछ कार्य स्मरण हो आया तो उन्होंने कौत्स को वापस लौटने की आज्ञा दी। लौटते समय मार्ग में कौत्स को भीषण दरद से पीड़ित एक सुंदर युवती दिखाई पड़ी, पर वह उसको अनदेखा कर आश्रम चला गया। कुछ समय पश्चात महर्षि कण्व भी उसी मार्ग से निकले तो उस युवती को पीड़ा से कराहते देखकर वे उसे अपने साथ आश्रम ले आए और उसके उपचार इत्यादि की व्यवस्था की। उस युवती ने महर्षि को यह भी बताया कि कौत्स उसे अनदेखा कर निकल गए थे। महर्षि ने कौत्स को बुलाकर पूछा—''वत्स! तुम्हें मार्ग में यह पीड़ित स्त्री मिली तो तुमने उसकी सहायता क्यों नहीं की ?'' कौत्स ने उत्तर दिया—''गुरुवर! मुझे भय था कि कहीं मैं उसके सौंदर्य से विचलित होकर धर्मभ्रष्ट न हो जाऊँ।'' महर्षि बोले—''पुत्र! दूसरे की पीड़ा का निवारण करना ही सबसे बड़ा धर्म है और क्या सौंदर्य से भागने से तुम्हें उससे विरक्ति हो जाएगी; छिपा हुआ भाव तो कभी भी प्रकट हो सकता है। वासना शमन का उपाय उसके करुणा में रूपांतरण में है।''

अनमोल संपदा है कन्या



नारी को सांसारिक वस्तु समझना भौतिकवादी अर्थशास्त्र का प्रतिपादन है। विवाह के उपरांत कन्या पराए घर जाती है व साथ में विवाह के साथ कुछ दहेज की सौगात भी ले जाती है। इसके विपरीत वर सबकी सेवा करने वाली बहू लाता है, स्व-अर्जित कमाई से घर की समृद्धि बढ़ाता है और बुढ़ापे का सहारा बनता है आदि विचारणाएँ ऐसी ही हैं; जैसे सांसारिक वस्तुओं का मोलभाव, जिनका कि मूल्यांकन उनकी उत्पादक शक्ति के आधार पर किया जाता है।

विवाहोपरांत यदि अपनी कन्या किसी दूसरे के घर जाती है तो यह भी संभव है कि अपने पुत्र के विवाह में किसी दूसरे की कन्या का अपने घर आगमन हो। कन्या के रूप में एक हाथ विवाह के समय उसे विदा करते हैं तो दूसरे हाथ से किसी दूसरे के घर से उसे वधू के रूप में हम प्राप्त भी कर लेते हैं। एक दृष्टि से यह मात्र अदला-बदली ही हुई। ऐसा नहीं है कि हमारा अपना कुछ बहुमूल्य चला ही गया हो और उसके बदले कुछ न मिला हो। इसके अतिरिक्त यदि कन्याओं को समुचित विकास का अवसर न मिले तो वंशवृद्धि के लिए जो लालसा व्यक्त की जाती है, वह जड़-मूल से ही विनष्ट हो जाएगी।

वंश को चलाने का कठिन कार्य एकमात्र कन्या को ही वहन करना पड़ता है। पुरुष का तो उसमें अकिंचन योगदान ही होता है। शिशु को गर्भ में धारण करने से लेकर उसका भरण-पोषण एवं संरक्षण करना तो केवल नारी के जिम्मे ही रहता है। पुरुष तो इस सबमें दूरवर्ती भागीदार होता है। ऐसी दशा में पुत्र की कामना करने वाले, वंश को चलाने व बुढ़ापे की लकड़ी खोजने वालों को भी इस मनोकामना की पूर्ति के लिए नारी का ही अनुग्रह प्राप्त करना पड़ता है। संतान चाहे स्त्री हो या पुरुष—नारी के शरीर और अंतराल में से निकला अनुदान ही है। ऐसी समझ के उपरांत भी नारी को उपेक्षित समझा जाए और उसकी अवज्ञा की जाए यह चिंतन अदूरदर्शिता से भरा हुआ एवं एकपक्षीय ही कहा जा सकता है।

घर में जब कन्या का जन्म होता है तो उदासी छा जाती है और जब पुत्र का जन्म होता है तो खुशियाँ मनाई जाती हैं व बधाइयाँ बाँटी जाती हैं। जीवन के दैनिक व्यवहार में भी कन्या के भोजन, वस्त्र, दुलार, शिक्षा, चिकित्सा आदि में कमी की जाती है। बच्चे वस्तुस्थिति को समझते हैं। विशेषतया भावनाओं का अंतर तो उनकी समझ में और भी जल्दी आ जाता है। अबोध समझी जाने वाली छोटी कन्याएँ भी ताड़ जाती हैं कि उनकी उपेक्षा की जा रही है और उन्हें बोझ समझकर पाला जा रहा है।

ऐसी प्रतिक्रिया उनके मनोबल को गिराती है। उनमें आत्महीनता का बीजांकुर जमाती है। वे अपने को भाग्यहीन मानने लगती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका व्यक्तित्व जिस स्तर तक उठ सकता था, वह उतना उठ नहीं पाता। वे आजीवन दबी, कुचली, पिछड़ी, कमजोर मनोभूमि की बनी रहती हैं। जिस घर में जाती हैं, उस परिवार की भी उतनी सेवा-सहायता नहीं कर पातीं, जितना कि वे विकसित व्यक्तित्व को साथ लेकर जाने पर कर सकती थीं। शरीर से अपंग व्यक्ति की आधी शक्ति मारी जाती है। उसी प्रकार दबे-कुचले मन वाला व्यक्ति भी स्वाभाविक प्रतिभा का एक बहुत बड़ा अंश गँवा बैठता है।

यह वैसी ही निर्दयता है, जैसा कि कुछ निष्ठुर भिखारी अपने बच्चों के अंग तोड़-मरोड़कर इस लायक बना देते हैं कि वे आजीवन भीख माँगें व उनके विकास के लिए उन्हें कोई जिम्मेदारी न उठानी पड़े। रोते-कलपते भाग्य को दोष देते वे भी अपने दिन काटें और हो सके तो असहाय मानकर लोग उनकी कुछ सहायता करें। कन्या के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा में की गई कटौती इसी प्रकार की बचत मानी जाती है। नारी का अवमूल्यन समूची मनुष्य जाति का अवमूल्यन है। नारी का व्यक्तित्व यदि दुर्बल रहने दिया गया तो वह जिस भी परिवार में जाएगी, जिस भी व्यक्ति के साथ रहेगी; वह उसकी उतनी सहायता न कर सकेगी, जितना कि विकसित होने पर वह कर सकती थी।

‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष

उसकी विचारपद्धति कमजोर रहेगी और क्रियाकलाप भी उपेक्षित ही रहेगा। वह ससुराल में जाकर भी न महत्त्वपूर्ण हो सकेगी और न यशस्वी। उसे पाकर ससुराल पक्ष भी उपेक्षित रही उस कन्या से उतने प्रमुदित नहीं होंगे, जितना कि उसके प्रतिभावान होने पर हो सकते थे। जिसके द्वारा अपेक्षा से कम लाभ मिलता है, उसका मान, मूल्यांकन भी कम होता है। पिता के घर में मिली उपेक्षा ससुराल में भी साथ जाती है और जैसा अपमान पिता के घर सहना पड़ता था, वैसा ही ससुराल में भी सहना पड़ता है।

फसल बोने, उगाने, सींचने, बड़ा करने की जिम्मेदारी तो अभिभावकों के घर में ही पूरी हो जाती है। ससुराल वाले तो केवल उन शुभ संस्कारों की फसल को काटने आते हैं। यदि बुवाई-सिंचाई, रखवाली में उपेक्षा बरती गई है तो उस फसल का समुचित लाभ काटने, बटोरने वालों को भी कैसे मिल सकता है और उनके द्वारा अपने भाग्य को कैसे सराहा जा सकता है?

यदि माता-पिता कन्या के जन्म को भाग्यहीनता का चिह्न मानते रहे हैं तो पड़ोसी, संबंधी, ससुराल वाले ही क्यों उसे भाग्यवान समझने लगे और क्यों सम्मान देने लगे। इस प्रकार अपनी कन्या का भविष्य अंधकारमय, गया-गुजरा बनाने की जिम्मेदारी प्रकारांतर से उन अभिभावकों पर ही आ पड़ती है, जिन्होंने उसे दुर्भाग्यसूचक माना और लड़के की तुलना में अपेक्षाकृत उपेक्षित व्यवहार किया।

माता के लिए तो इस प्रकार की मान्यता और पक्षपातभरी नीति अपनाना और भी बुरा है। वह स्वयं भी एक नारी है। किसी नारी के ही गर्भ से पैदा हुई है। यह उसकी अपनी बिरादरी है। देखा गया है कि समान गुण, स्वभाव वाले अधिक जल्दी घुल-मिल जाते हैं और एकदूसरे के साथ प्रसन्नता अनुभव करते हैं, सहायक बनते हैं। इस परंपरा के अनुसार नारियों को अपने ही समान अन्य नारियों के उत्थान में सहयोगी होना चाहिए।

पुरुष भले ही इस बात को अधिक महत्त्व न दें, पर स्त्रियाँ आसमान सिर पर उठा लेती हैं। दादी, चाची, ताई, बुआ आदि सबके मुँह पर उदासी छा जाती है। जननी को कोसती, लाँछन लगाती भी देखी जाती हैं। उन्हीं का अनुकरण पड़ोसी-संबंधी भी करते हैं। इस प्रकार उस जननी को उलटा लांछित होना पड़ता है, जिसने इतना कष्ट सहकर उस बालिका को जन्म दिया; जान जोखिम उठाई। ऐसे लाँछन को सरासर अत्याचार ही कहना चाहिए।

कुछ वर्षों पहले किन्हीं विशेष वर्गों में कन्या को जन्मते ही मार देने का रिवाज था। अँगरेज सरकार ने इसके विरुद्ध कानून बनाया था। अब नया रिवाज चला है। नई मशीनें ऐसी आई हैं, जो गर्भनाल में ही भ्रूण के लिंग का पता लगा लेती हैं। इसका परीक्षण कराने वालों में से कितने ही ऐसे निष्ठुर अभिभावक होते हैं, जो कन्या का पता चलने पर उसका गर्भपात करा देते हैं।

यह भी एक प्रकार का कन्यावध ही हुआ। अल्प आयु में विवाह करके अपने धन को पराए आँगन में पटक देने जैसा हुआ। अभिभावक सोचते हैं कि उनके रोटी-कपड़े की बचत हुई। ससुराल वाले सोचते हैं कि बालकपन से ही काम में जुटेगी तो उसी ढाँचे में ढल जाएगी। बड़ी होने पर आनाकानी न करेगी। पढ़ने-पढ़ाने का झंझट भी न रहेगा, जिससे कुछ कह सकने या कर सकने की बात न सोच पाएगी और सिर न उठा पाएगी।

जिस प्रकार घर में पालतू कबूतरों को पंगु बनाकर आँगन अथवा पिंजड़े में ही घूमने-फिरने तक की उनकी सीमा सीमित कर दी जाती है, ठीक उसी प्रकार नारी की संभावनाओं को सीमित करने के अनैतिक कृत्य में आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। हमें यह समझना होगा कि कन्या अनमोल निधि है। उसका यथोचित सम्मान के साथ पालन-पोषण करना चाहिए और उसके संस्कार एवं शिक्षा की समुचित व्यवस्था हम सभी की नैतिक जिम्मेदारी है। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनके एक गृहस्थ भक्त ने पूछा—"महाराज! सच्चे ब्राह्मण के क्या लक्षण होते हैं?" अपने भक्त की जिज्ञासा का समाधान करते वे उससे कहने लगे—"देखो! सच्चे ब्राह्मण पके चावल जैसे कोमल, स्वादिष्ट हो जाते हैं और समूह में रहते हुए भी अपनी सत्ता को अन्यों के साथ चिपकने नहीं देते।"

क्या खाएँ? क्यों खाएँ? कैसे खाएँ?



आहार के संबंध में ऋग्वेद में एक श्लोक है—

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न, वोचाम मा सुनोतेति सोमम्।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो, मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत्॥

(ऋग्वेद 2/30/7)

अर्थात हे मनुष्यो! जो खाद्य पदार्थ शरीर को शक्ति देता हुआ तृप्ति प्रदान करे, ओज, कांति और सुख दे, इंद्रियों को शक्ति प्रदान करे, जिससे इंद्रियाँ कर्मरूपी यज्ञ हेतु सक्षम रहें, वही सेवन योग्य है। अविच्छिन्न जिससे श्रम करने की शक्ति का ह्रास हो, आलस्य या नशा उत्पन्न हो, ऐसी औषधियों (खाद्य पदार्थों) का मत सेवन करो।

मानव शरीर पर, मानव जीवन पर आहार का बहुत व्यापक प्रभाव है। आहार के बिना मानव जीवन संभव ही नहीं है। मानव शरीर का अस्तित्व ही आहार पर निर्भर है। बिना आहार के मानव शरीर में न तो प्राणबल संभव है और न ही शरीरबल। मनुष्य के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य दोनों में ही आहार का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है और ग्रहण किए जाने वाले आहार (सात्त्विक, राजसिक व तामसिक आहार) के अनुरूप ही इनमें उतार-चढ़ाव आता रहता है। आहार से मन पर पड़ने वाले सूक्ष्मप्रभाव को देखकर हमारी भारतीय संस्कृति में खान-पान की शुद्धता को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।

विकृत एवं अनियमित आहार केवल शरीर को ही बीमार नहीं करता, वरन मन को भी चंचल व उद्विग्न बना देता है। गरिष्ठ, तीखा, तला-भुना, डिब्बा बंद, बासी आहार लेने के अनेक दुष्प्रभाव हैं, जिनके कारण मनुष्य शरीर में कई तरह की बीमारियाँ पनपती हैं। देखा जाए तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लगभग सभी बीमारियों का संबंध आहार से ही किसी-न-किसी रूप में होता है। आजकल प्रचलन में फास्ट फूड व जंक फूड की बहुतायत है, जिनके कारण भी कई तरह की नई बीमारियाँ मानव शरीर में पनप रही हैं।

आहार हमारे जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है, अत: इसके बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानना जरूरी है। आहार का मुख्य उद्देश्य शरीर की क्षीणता की पूर्ति करना और उसकी वृद्धि करना भी है। शिशु जिसका भार जन्म के समय मात्र 3-4 सेर होता है, वह धीरे-धीरे बढ़कर दो-डेढ़ मन का युवक बन जाता है तो यह आहार के द्वारा ही संभव होता है। मनुष्य का शरीर प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ कार्य करता रहता है, गहरी नींद में सो जाने पर भी फेफड़े और हृदय अपना काम करते रहते हैं। इस कार्य के फलस्वरूप शरीर की कोशिकाओं के निर्माण का भार हमारी जीवनीशक्ति पर रहता है और यह कार्य आहार के माध्यम से ही संपन्न होता है।

यदि किसी कारणवश शरीर को समय पर उपयुक्त आहार न मिले तो उसे थकावट और कमजोरी मालूम पड़ने लगती है और यदि निरंतर यही क्रम चले तो शरीर दुर्बल, क्षीण हो जाता है और अंत में प्राणों को धारण कर सकना भी कठिन हो जाता है। इसलिए शरीर के पोषण हेतु, स्वास्थ्य हेतु, उसे रोगमुक्त करने हेतु शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने हेतु व शरीर की क्रियाविधि सही ढंग से सुचारू करने हेतु पोषणयुक्त संतुलित आहार की आवश्यकता होती है।

आहार के सामान्य गुणों को बताते हुए महर्षि सुश्रुत कहते हैं—

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृत् देहधारकः।
आयुस्तेजःसमुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः॥

अर्थात आहार शरीर को पुष्ट करने वाला, बलकारक, देह को धारण करने वाला, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है। अत: आहार के संबंध में मुख्य पाँच सूत्रों को जानना बेहद जरूरी है—(1) **क्या खाएँ?**

(2) **कितना खाएँ?**

(3) **कब खाएँ?**

(4) **क्यों खाएँ?**

(5) **कैसे खाएँ?**

(1) **क्या खाएँ?** हम केवल उन चीजों को खाएँ, जो शरीर का पोषण करने वाली हों। यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि भोजन स्वास्थ्य की जरूरत है, स्वाद की नहीं।

(2) कितना खाएँ ? मिताशी स्यात् यानी थोड़ी ही मात्रा में खाएँ। खाद्य पदार्थ कितने ही पौष्टिक और स्वास्थ्यवर्द्धक हों, यदि उनका सेवन उचित मात्रा में नहीं किया गया तो वे हानिकारक सिद्ध होते हैं। अत: भोजन इतना अधिक न खाया जाए कि मुँह से डकार के साथ बाहर आने लगे और न ही इतना कम खाया जाए कि शरीर को पोषण ही न मिले।

(3) कब खाएँ ? भोजन अग्निहोत्र की भाँति दो ही समय करना चाहिए। प्रथम भोजन 12 बजे से पूर्व तथा दूसरा भोजन सायंकाल 7 बजे तक कर लेना चाहिए। आयुर्वेद में भी दो बार भोजन करने का विधान है। अपने भोजन का समय निश्चित और उचित मात्रा में करने से भोजन समय से पच जाता है। अत: भोजन दिन भर में अधिक-से-अधिक दो बार और वह भी कड़ी भूख लगने पर करना चाहिए। जब-तब खाते रहना, नियमित भोजन के अलावा कई बार नाश्ता कर लेना, किसी भी तरह से विवेकपूर्ण निर्णय नहीं है।

खान-पान के तौर-तरीकों के संबंध में चिकित्सकों व मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि भूख भी कई तरह की होती है। उदाहरण के लिए किसी को खाते हुए देखकर खाने के लिए लालायित हो जाना। चिंता या तनाव के क्षणों में बार-बार खाने की इच्छा करना अथवा जैविक लय के अनुसार सही समय पर भूख लगना।

विशेषज्ञों का यह कहना है कि पहले दोनों तरीके गलत हैं। केवल तीसरा तरीका ही सही है कि जैविक लय के अनुसार भूख लगने पर खाना। अत: खुलकर सही भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिए।

(4) क्यों खाएँ ? भोजन करने का उद्देश्य है—अपने शरीर को स्वस्थ, नीरोग और बलवान बनाना। मनुष्य का धर्म है—शरीर को नीरोग रखना, क्योंकि **शरीर माध्यम खलु धर्मसाधनम्**—अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का माध्यम यह स्थूलशरीर ही है। अत: भोजन सदैव स्वस्थ और जीवित रहने के लिए किया जाना चाहिए न कि केवल स्वाद लेने के लिए खाना चाहिए और न ही खाने के लिए जीना चाहिए, बल्कि जीवित व स्वस्थ रहने के लिए हमें खाना चाहिए।

(5) कैसे खाएँ ? इसका जवाब है कि भोजन इस प्रकार खाया जाना चाहिए, जिसमें जठराग्नि को कम-से-कम श्रम करना पड़े। हमारे मुख में 32 दाँत होते हैं। अत: प्रत्येक ग्रास को इतनी देर तक चबाना चाहिए, जिससे भोजन तरल हो जाए और फिर तभी उसका घूँट गले के नीचे उतारना चाहिए।

ऐसा कहा भी गया है कि भोजन को पीना चाहिए और पानी को खाना चाहिए। जो भी भोजन सामने आए उस भोजन की पूजा कर, स्थिर चित्त होकर, शांत मन से ईश्वर स्मरण करते हुए भोजन को भगवान के प्रसाद के रूप में खाना चाहिए। भोजन यदि प्रसाद के रूप में किया जाएगा तो रूखी-सूखी रोटी भी स्वास्थ्यवर्द्धक बन जाती है। यदि इसके विपरीत चिड़चिड़े मन से हड़बड़ी में मेवा-मिष्टान्न व पकवान भी खाए जाएँ तो वे भी रोगों को बढ़ाने वाले साबित होते हैं।

भोजन करते समय अधिक जल पीने से भोजन अच्छी तरह पचता नहीं है। इसी प्रकार बिलकुल जल न पीने से भोजन का पाक अच्छी तरह नहीं होता। भोजन करने के एक घंटे बाद पानी पीना प्रारंभ कर, प्रतिघंटे थोड़ा-थोड़ा जल पीते रहना चाहिए। ऐसा करने से भोजन जल्दी पच जाता है। जूठा भोजन न तो किसी को देना चाहिए और न ही खाना चाहिए। भोजन के संदर्भ में आयुर्वेद में एक बड़ी प्रचलित कथा है।

महर्षि चरक ने अपनी शिक्षा का समुचित विस्तार कर चुकने के पश्चात सोचा कि मैंने जो कहा है, उसे मेरे शिष्यों ने ठीक तरह से समझा है या नहीं, इसकी परीक्षा लेनी चाहिए। अत: परीक्षा लेने के लिए वे एक कबूतर का रूप बनाकर उस पेड़ पर बैठ गए, जहाँ पर बहुत सारे वैद्य बैठे हुए थे। तब कबूतर के रूप में महर्षि चरक ने अपनी भाषा में वैद्यों से प्रश्न पूछा—कोऽरुक ? अर्थात रोगी कौन बनता है ? और वह नीरोग व स्वस्थ कैसे होता है ?

इस प्रश्न से उनका अभिप्राय यह था कि जो रोगों के मूल कारणों को जानता होगा, वही उसकी रोक-थाम के उपाय बताएगा। चिकित्सा-उपचार भी उसी वैद्य का सफल होगा, अन्यथा औषधि मात्र से रोग का स्थायी निराकरण कहाँ संभव है ? कबूतर के रूप में महर्षि चरक ने बार-बार सभी वैद्यों के सम्मुख अपना प्रश्न दोहराया—कोऽरुक ? कोऽरुक ? कोऽरुक ? इस प्रश्न के उत्तर में सभी ने अपनी मान्यता व्यक्त की।

रोगमुक्त होने के निमित्त सभी उपचार बताते चले गए, लेकिन किसी ने वह उपाय न बताया कि जिससे रोगी

होने का अवसर ही न आए। वैद्यों के दिए जाने वाले उत्तर तो शास्त्रसम्मत थे, लेकिन उनमें सारे सिद्धांतों का समावेश न रहने से कबूतर रूप महर्षि चरक को संतोष न हुआ और वे खिन्न मन से उदास होकर एक कोने में जा बैठे और सोचने लगे कि इन लोगों का अनुभव अभी गंभीर नहीं है। तभी उधर से महर्षि वाग्भट गुजरे। उनसे भी कबूतर ने वही प्रश्न किया।

वाग्भट ने कबूतर के रूप में महर्षि चरक को पहचान लिया और नतमस्तक होकर उन्हीं की भाषा में प्रत्युत्तर देते हुए तीन शब्द कहे—**मितभुक्, हितभुक्, ऋतभुक्**। सही जवाब सुनकर महर्षि चरक को संतोष हुआ और वे उस पक्षी के रूप में ही वहाँ से उड़ गए; क्योंकि उन्हें अपने प्रश्न का सही उत्तर मिल गया था।

मितभुक्—अर्थात भूख से कम खाना। जितना आवश्यक है, उतना खाना; क्योंकि ज्यादा खाने वाला व्यक्ति किसी भी तरह से कोई साधन नहीं कर सकता। वह तो खाने के बाद सिर्फ पचाने वाले चूर्ण एवं हाजमे की गोलियाँ ही ढूँढ़ता रहता है। आवश्यकता से अधिक खाने वाले व्यक्ति के शरीर में भारीपन, अजीर्ण, अनपच आदि विकृतियाँ पैदा होने लगती हैं और आवश्यकता से कम खाने वाले व्यक्ति का शरीर धीरे-धीरे दुर्बल और शक्तिहीन हो जाता है और इसलिए चाहे घर में खाया जाए या बाहर खाया जाए; इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि पाचन-क्रिया पर, पेट पर कभी अनुचित भार न पड़े।

हितभुक्—अर्थात सात्त्विक खाना। स्वस्थ व्यक्ति वह है, जो हितभोजी है। हितभोजी यानी जो स्वास्थ्य के अनुकूल एवं उपयोगी पदार्थ ही भोजन के रूप में ग्रहण करता है। ऐसा व्यक्ति स्वाद के लिए नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए खाता है।

ऋतभुक्—अर्थात न्यायोपार्जित खाना। ऋत का संबंध पवित्रता एवं चेतना की निर्मलता से है। ऋत का अर्थ भोजन में समायी हुई भावनाओं से जुड़ा है। भोजन बनाने वाले की भावनाएँ क्या हैं ? फिर उसे खाने वाले कर्त्तव्यनिष्ठ हैं भी या नहीं। ऋत भोजन को वही तैयार कर सकता है, जो भावनाशील है और जिसमें माँ की ममता है। इसलिए इस भोजन को वही खा सकता है, जो मुफ्त का नहीं खाता। दूसरों का शोषण नहीं करता।

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि हम दूसरों को जितनी ज्यादा सद्भावनाएँ अर्पित करते हैं, उतना ही हमारा आंतरिक बल बढ़ता है। इसलिए आहार का मूल्यांकन चेतना के विकास का मूल्यांकन है। ऋत आहार का स्वरूप हमारी चेतना को परिष्कृत या विकृत करता है।

आहार के संदर्भ में आयुर्वेद के सबसे प्राचीन ग्रंथ 'चरक संहिता' में लिखा है—

मात्राशी स्यात। आहारमात्रा पुनराग्निबलापेक्षिणी॥ द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यमर्द्धसौहित्यं वा गुरूणाम् उपदिश्यते। लघूनामपि च नातिसौहित्यं अग्नेर्युक्त्यर्थम्।

अर्थात मनुष्यों को भोजन परिमित मात्रा में करना चाहिए। वह उतनी ही मात्रा में होना चाहिए, जितनी हमारी पाचनशक्ति हो।

फिर भोजन में देर से पचने वाले (गुरुपाक) और शीघ्र पचने वाले (लघुपाक) खाद्य पदार्थों का भी ध्यान रखना चाहिए। पचने में भारी पदार्थों को आधा या पौन हिस्सा पेट भरकर ही खाना चाहिए और पचने में हलके पदार्थों को भी भूख से कुछ कम ही खाना चाहिए, जिससे जठराग्नि का बल बना रहे। इसी बात को 'भावप्रकाश' ग्रंथ में इस प्रकार कहा गया है—

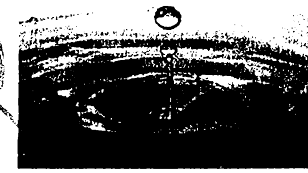
कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीये वारि पूरयेत्।
वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमव शेषयेत्॥

अर्थात भोजन ग्रहण करने में आमाशय के दो भाग भोजन से भरें, एक भाग पानी से पूर्ण करें और चौथाई भाग वायु संचारण के लिए खाली छोड़ दें।

भोजन ग्रहण करने का यह नियम हम सभी के लिए हितकारी है और शक्ति व स्वास्थ्यप्रदाता है; क्योंकि यदि हम भोजन के स्वाद में वशीभूत होकर ठूँस-ठूँसकर पेट को भर लेते हैं तो उसका नतीजा सदैव बहुत हानिकारक होता है। ऐसा भोजन कभी ठीक तरह से पच नहीं पाता।

इस प्रकार के भोजन से ही कब्ज और अजीर्ण की उत्पत्ति होती है। ऐसे भोजन से संचित शक्ति का भी अपव्यय होता है और हम इसके कारण और ज्यादा कमजोर हो जाते हैं। इसलिए भोजन ग्रहण करने में स्वाद के वशीभूत नहीं होना चाहिए और सादा व सुपाच्य भोजन परिमित मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। ❑

प्रेम ही परमेश्वर है



अनुभवी जनों ने कहा है—'**प्रेम ही परमेश्वर है**'। प्रेम करने वाला जहाँ शून्य हो जाता है, वहीं परमात्मा प्रकट होता है। अपने अनंत-अनंत रूपों में उसकी वास्तविकता प्रकट होने लगती है। जहाँ हम स्वयं को खो देते हैं, वहीं उसकी वीणा बज उठती है। उसके अनंत स्वर अस्तित्व को घेर लेते हैं। यह ऐसी विलक्षण अनुभूति है, जिसे कहने के लिए पाने वाला नहीं बचता। प्रेम को जानने वाला उसे जानने में खो जाता है, उसी में पिघल जाता है, बह जाता है। बोलने के लिए बचता ही नहीं। प्रेम एक ऐसी गेंद है, जिसे जितनी जोर से फेंका जाए वह उतनी ही जोर से वापस हमारी ओर आती है।

यदि हम किसी को सच्चे हृदय से याद करते हों तो उस तक हमारी तरंगें पहुँचेंगी ही। इस प्रकार जिसे भी याद किया जाए, वह हमारे पास दौड़ा चला आता है। इसी का नाम प्रेम है। प्रेम का दूसरा नाम भक्ति है। यह मनुष्य के भीतर एक विशेषता है, जो जितनी मनुष्य में होगी उसको उतना ही स्नेह से भरपूर व खुशहाल बनाए रखेगी। आनंद की तलाश में हम इधर-उधर भटकते रहते हैं। हम खाने-पीने और भोगने की चीजों को आनंद समझ बैठते हैं। यह आनंद नहीं है, इंद्रियजन्य संवेदना है। मनुष्य की जीभ का स्वाद थोड़ी देर के लिए है।

आनंद क्या है ? सौंदर्यशाला की भाषा में इसे सौंदर्य कहा जाता है। आनंद मनुष्य के भीतर ही है और इसी को लोग भगवान मानते हैं। उसी में भगवान का स्वरूप दिखता है। वह आनंद है, परमात्मा तो केवल अनुभव करने वाली चीज है।

खुदा हमको ऐसी खुदाई न दे,
कि अपने सिवा कुछ दिखाई न दे
खुदा ऐसे एहसास का नाम है,
रहे सामने और दिखाई न दे।

इन पंक्तियों के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद लिखते हैं कि जो वस्तु आनंद नहीं दे सकती है, वह सुंदर नहीं हो सकती है। वह सत्य भी नहीं हो सकती है। आनंद क्या है ? सत्य क्या है ? सुंदर क्या है ?

इसका उत्तर है कि सुंदर वह है, जो शाश्वत है, नित्य है; ठीक उसी तरह, जिस तरह प्रेम अजर-अमर है। प्रेम के आधार पर हम स्वयं व दूसरों को सुधार सकते हैं। प्रह्लाद अपने पिता से बहुत प्रेम करते थे, लेकिन उन्होंने अपने पिता की अनुचित आज्ञा को स्वीकार नहीं किया। प्रेम करते-करते उनकी आज्ञा का पालन करना छोड़ दिया। हम भी ऐसी ही किसी से नाराजगी जता सकते हैं। यह उसे रास्ते पर लाने का उपयुक्त ढंग है। शर्त यह है कि उसका आधार हमारा प्रेम हो।

इस तरह हमारे आनंद, शांति, खुशहाली, गौरव, गरिमा में वृद्धि होती है। यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम दूसरों को किस दृष्टिकोण से देखते हैं। यदि हम सबको अपना समझते हैं तो सभी हमको अपने नजर आएँगे। हमको चारों तरफ अपनापन बिखरा नजर आएगा। प्रेम पाषाणों के घरों में नहीं, वरन मानव-मन के मंदिर में निवास करता है। पृथ्वी का प्रेम ही परलोक का परमात्मा है। प्रेम ही शक्ति, भक्ति और मुक्ति का परम साधन है। अत: प्रेम की पवित्र भावना को स्वप्न में भी हमें अपने से अलग नहीं होने देना चाहिए।

प्रेम परमानंद है, जिसके बल पर ही हृदय से घृणा की भावनाओं को मिटाया जा सकता है। प्रेम से ही सत्य और शांति को प्राप्त किया जा सकता है तभी तो संत कबीर ने कहा है—

कबीर प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय,
रोम-रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय।
प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट विकाय,
राजा प्रजा जेहि रुचे, शीश देइ ले जाय।

जिसने एक बार प्रेम का प्याला पी लिया, उसे फिर किसी और वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती है; क्योंकि प्रेम न तो किसी दुकान पर बिकता है और न ही खेतों में उत्पन्न होता है। इसे प्राप्त करने के लिए अहंकार को नष्ट करना पड़ता है। जब इसका मानव मन पर पूरा अधिकार हो जाता है तो स्वयं भगवान भी उससे मिलने के लिए अधीर हो उठते हैं।

प्रेम की शक्ति ही प्रभु की भक्ति है। इसलिए सूफी संत कहते हैं—

मुहब्बत की नहीं जाती, मुहब्बत हो ही जाती है,
यह शोला खुद भड़कता है, भड़काया नहीं जाता।

प्रेम की सीमा असीम है। यह समय और देश के बंधनों से मुक्त है। इसे बंदी नहीं किया जा सकता है। यह सभी बंधनों को नष्ट कर देता है।

हम प्रेम के शीतल जल द्वारा हृदय से घृणा की प्रचंड अग्नि को शांत कर सकते हैं। प्रेम की भावना पैदा होने से हमारे हृदय में किसी के विरुद्ध घृणा की भावना नहीं रहती है। हम सभी को अपना निजस्वरूप ही समझेंगे फिर अपने-पराये का दुराव ही समाप्त हो जाएगा। परायेपन की भावना समाप्त होगी तो कोई किसी को कष्ट नहीं देगा।

तब कोई किसी को दु:खी नहीं करेगा; क्योंकि औरों की पीड़ा कष्ट और दु:ख तब अपने ही बन जाते हैं, जब हमारा हृदय प्रेम से सराबोर हो जाएगा तो हमसे पशु-पक्षी भी प्रेम करेंगे। वे भी हमारे प्रेम के वश में होकर स्वयं प्रसन्नता से रहेंगे किंतु प्रेम-भावना के अभाव में हम उन्हें पीड़ा पहुँचाते और दु:खी करते हैं।

मुक्ति का रहस्य पवित्र प्रेम और परोपकार में ही छिपा हुआ है। इसलिए प्रेम को अपना लें; क्योंकि प्रभु ही प्रेम हैं। सूफी संतों का हृदय उद्‌गार इस तरह पुकार उठता है—

है इंसान का मजहब मुहब्बत-मुहब्बत
बढ़ाए यह आपस में रिश्ता-ए-उल्फत।

जीव की उत्पत्ति और जीवन का आधार भी प्रेम ही है। हमारी आत्मा का आहार प्रेम ही है। प्रेम से बढ़कर दूसरी कोई आराधना नहीं है और प्रभु को प्राप्त करने का साधन भी प्रेम ही है। प्रेम जीव का स्वाभाविक गुण है, प्राकृतिक आवश्यकता है। जैसे रोटी हमारे शरीर का आहार है, वैसे ही प्रेम हमारी आत्मा का आहार है। रोटी हमें शारीरिक बल देती है; जबकि प्रेम हमें आत्मिक शक्ति प्रदान करता है।

प्रेम का मार्ग विकास की ओर ले जाता है और हमें खुशी व शांति देता है। प्रेम करने वाले खिले हुए फूल की तरह होते हैं। उनके चेहरे पर सदा ओजस्वी चमक रहती है जिसे देखकर हर कोई प्रसन्न होता है। उसका व्यवहार फूल की सुगंध की तरह सभी को आनंद देता है। प्रभु की रचना से प्रेम करना ही प्रभु को पाना है, परंतु वहाँ पर आसक्त नहीं होना चाहिए। प्राणी-मात्र की पीड़ा को अनुभव करना ही प्रेम-मार्ग की पहली सीढ़ी है।

किसी ने सही ही कहा है—

नहीं प्रेम जिसमें वह क्या आदमी है,
वह दुनिया में आकर करें दिन कटी है।

इसके विपरीत जो आदमी प्रेम करता है, उसे सारी दुनिया अपनी लगती है व सारी दुनिया भी उसे अपना ही समझती है। एक ऐसी जगह है प्रेम, जहाँ स्वयं को खोया तो जा सकता है, लेकिन खोजा नहीं जा सकता। इसकी प्रगाढ़ अनुभूति में खोता है स्वयं का अस्तित्व और मिलता है परमात्मा। ❑

****

स्वाति नक्षत्र था और वर्षा की बूँदें तेजी से चली जा रही थीं। हवा ने उन्हें रोककर पूछा—"इतनी गति से कहाँ चली जा रही हो?" बूँद बोली—"समुद्र पर सूर्य की दृष्टि पड़ी है, वे उन्हें सुखा डालना चाहते हैं। इसीलिए सहायता को निकली हूँ।" हवा बोली—"छोड़ो व्यर्थ की चिंता। खुद को मिटाकर भी क्या कोई किसी की सहायता कर सकता है। चार दिन की जिंदगी है, उसे सुख से जिओ।" हवा की बात अनसुनी कर बूँद सागर की ओर लुढ़क पड़ी और सीधे तैरती सीप के आँचल में जा गिरी। बूँद मोती में रूपांतरित हो गई। सागर की लहरों में से ध्वनि निकली—निज अस्तित्व की चिंता छोड़कर समाज के कल्याण की ओर जो अग्रसर होते हैं, वे जनमानस के मोती बन जाते हैं।

****

'वंदे मातरम्' के कालजयी रचयिता बंकिमचंद्र



राष्ट्रगीत 'वंदे मातरम्' के रचयिता बंकिमचंद्र जी का नाम इतिहास में युगों-युगों तक अमर रहेगा; क्योंकि यह गीत उनकी एक ऐसी कृति है, जो आज भी प्रत्येक भारतवासी के हृदय को आंदोलित करने की क्षमता रखती है।

बंकिमचंद्र चटर्जी का जन्म 26 जून, 1839 को हुआ था। उनके पिता का नाम यादवचंद्र चटर्जी था। बंकिमचंद्र ने साहित्य जगत् को ऐसी कालजयी कृतियाँ प्रदान कीं, जिनके लिए उन्हें सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। उनसे पूर्व जो भी उपन्यास लिखे गए, वे या तो वर्णनात्मक शैली में लिखे गए या फिर उनकी विषयवस्तु पौराणिक कथा-कहानियों पर आधारित होती थी। इसीलिए उन कृतियों को न तो जनसाधारण अपने जीवन के समीप देखता था और न ही वे किसी प्रकार की जनचेतना का आधार बन सकीं।

हम यह बात निश्चित रूप से कह सकते हैं कि बंकिमचंद्र भारतवर्ष के प्रथम ऐसे उपन्यासकार हैं, जिनकी रचनाओं ने जनमानस को राष्ट्रीय नवजागरण का संदेश दिया तथा यह कार्य उन्होंने उस समय किया, जब भारतवर्ष की जनता अपनी अस्मिता एवं अपने गौरव को विस्मृत करके स्वयं को परवश तथा असहाय अनुभव कर रही थी।

उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा अँगरेजी लेखन से आरंभ की थी। इस भाषा में उनकी प्रथम कृति '**राजमोहन्स स्पाउस**' थी, मगर इसका प्रकाशन नहीं हो पाया; क्योंकि बंकिमचंद्र को इस बात का एहसास हो गया कि जब तक अपने देश की भाषा में सृजनकार्य नहीं किया जाएगा; तब तक यहाँ के जनमानस को उद्वेलित करना संभव नहीं होगा।

इसीलिए उस अँगरेजी उपन्यास को उन्होंने आधा-अधूरा छोड़कर अपनी भाषा में साहित्य-सृजन आरंभ कर दिया। उन्होंने वर्णनात्मक शैली या पौराणिक कल्पना प्रसूत कथानकों के स्थान पर ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी रचनाओं का आधार बनाया।

दुर्गेशनंदिनी, आनंदमठ, कपालकुंडला, मृणालिनी, राजसिंह, विषवृक्ष, कृष्णकांत का वसीयतनामा, सीताराम, चंद्रशेखर, राधारानी, रजनी और इंदिरा उनकी कृतियाँ अपने आप में अद्वितीय एवं प्रशंसनीय हैं। उन्होंने ऐतिहासिक या समाज में घटित होने वाली एवं जनमानस से जुड़ी घटनाओं को लेकर इन सभी उपन्यासों की रचना की थी।

उस काल में इतनी सटीकता और तथ्यात्मकता को लेखनीबद्ध करना अपने आप में एक अद्भुत कृत्य था, जिसका बंकिमचंद्र ने सफलतापूर्वक निर्वाह किया था। अपने उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' में अकबरकालीन बंगाल का सटीक एवं सजीव चित्रण किया था। 'आनंदमठ' उनकी सबसे उत्कृष्ट कृति मानी जाती है तथा इसी उपन्यास में उन्होंने 'वंदे मातरम्' गीत का भी समावेश किया है।

इस उपन्यास एवं गीत का अपना एक अलग ही स्थान है; क्योंकि यह उपन्यास सन् 1857 की महाक्रांति से पूर्व हुए संन्यासी विद्रोह को केंद्रबिंदु बनाकर लिखा गया था। यह संन्यासी-विद्रोह सन् 1772 से आरंभ होकर लगभग बीस वर्षों तक चला था।

उनके संबंध में उनके छोटे भाई पूर्णचंद्र चटर्जी ने अपने एक लेख 'बंकिम प्रसंग' में लिखा था कि हमारे चचेरे पितामह एक सौ आठ वर्ष तक जीवित रहे। उनके निकट हम सब यानी बंकिमचंद्र भी कहानियाँ सुना करते थे। पितामह ने पहले खेती की चर्चा की, फिर अकाल का वर्णन करने लगे। पिछले 3-4 सालों में खेती खराब हो रही थी और सन् 1770 ई० में फसल पैदा नहीं हुई।

आगे उन्होंने लिखा था कि सच तो यह है कि अनाज कहीं नहीं था। लोग डकैती करने लगे। मैं कहानी को भूल गया था। सन् 1886 ई० में उड़ीसा में भयंकर अकाल पड़ा, तब इस कहानी को उनकी जबानी सुना। शायद यह अकाल को लेकर एक उपन्यास लिखने की इच्छा उनके मन में थी।

यदि 'वंदे मातरम्' लिखने का प्रेरणास्त्रोत ढूँढ़ा जाए तो इस संबंध में डॉ० भूपेंद्रनाथ दत्त के अनुसार संन्यासी विद्रोह के समय विद्रोहियों ने 'ओम् वंदे मातरम्' का नारा लगाया था। इस उपन्यास के माध्यम से बंकिम जी ने पुनः भारत के

जनमानस को दासता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए अँगड़ाई लेने हेतु प्रेरित करने का सार्थक प्रयास किया था।

उपन्यास में लिखे गए 'वंदे मातरम्' के संबंध में योगी अरविंद ने 'इंदुप्रकाश' में लिखा था कि बत्तीस वर्ष पूर्व बंकिम ने अपना यह महान गीत लिखा था और कुछ ही लोगों ने उसे सुना, किंतु लंबी मोहनिद्रा में आकस्मिक जागरण के क्षण में बंगाल के लोगों ने सत्य के लिए इधर-उधर देखा और उसी सौभाग्य क्षण में कोई 'वंदे मातरम्' गा उठा। मंत्र दिया गया और एक दिन समूचा राष्ट्र देशभक्ति, धर्म का अनुयायी बन गया।

गीत के रचयिता ने स्वयं भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि एक दिन ऐसा आएगा कि बंगभूमि इस गीत को सुनकर नाचने लगेगी। एक बंगाल क्या, सारा हिंदुस्तान इस गीत से प्रेरणा ग्रहण करेगा। सारा देश एक सुर में यह गीत गाने लगेगा। उनकी यह भविष्यवाणी अक्षरश: सिद्ध हुई।

बंकिम स्मृति मंदिर के संग्रहाध्यक्ष प्रख्यात लेखक श्री गोपालचंद्र राय के अनुसार 'वंदे मातरम्' अगस्त सन् 1857 से मार्च सन् 1876 के बीच लिखा गया है; क्योंकि उन दिनों बंकिमचंद्र अपने कार्य से अवकाश लेकर अपने घर में स्थित 'बंग दर्शन प्रेस' से पत्रिका के प्रकाशन का कार्य देख रहे थे।

इस पत्रिका का प्रकाशन उनके संपादन में सन् 1873 से मार्च सन् 1876 तक होता रहा। 'आनंदमठ' का प्रथम प्रकाशन धारावाहिक के रूप में 'बंग दर्शन' पत्रिका में सन् 1880 से 1882 के मध्य हुआ था। उनका उपन्यास 'कपालकुंडला' भी अकबरकालीन बंगाल पर आधारित है।

'मृणालिनी' प्रारंभिक मुगल आततायियों एवं आक्रमणकारियों के अत्याचारों को लेकर रचा गया है। 'राजसिंह' राजपूतों की शौर्यगाथाओं और औरंगजेब की मजहबपरस्ती तथा अन्यायपूर्ण शासन को लेकर लिखा गया उपन्यास है।

'सीताराम' मुर्शिदाबाद के नवाबी शासनकाल में हिंदू पीड़ितों द्वारा किए गए विद्रोह के विवेचन को लेकर लिखा गया है। 'चंद्रशेखर' में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा की गई कुटिलताओं का विस्तार से लेखा-जोखा है।

इन समस्त रचनाओं में उन्होंने विगत या तत्कालीन परिस्थितियों एवं घटनाओं को लेकर अपनी लेखनी द्वारा किसी-न-किसी प्रकार अत्याचार और अनाचार से लोहा लेने की ही प्रेरणा दी है। आज भी इसी तरह के सृजनशील एवं विधेयात्मक साहित्य की आवश्यकता है, जो वर्तमान समय की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके। ❑

वन में खड़े एक वृक्ष के साथ लिपटी एक लता भी धीरे-धीरे वृक्ष के बराबर हो गई। वृक्ष का आश्रय लेकर उसने भी फलना-फूलना आरंभ कर दिया। बेल को फलते-फूलते देखकर वृक्ष को अहंकार हो गया कि मैं न होता तो लता का अस्तित्व ही न होता। वह लता को धमकाते हुए बोला—''ओ बेल! चुपचाप मेरा कहना माना कर; मैं जो कह रहा हूँ, वह किया कर, नहीं तो धक्के मार कर भगा दूँगा।'' पेड़ का प्रलाप जारी था कि दो पथिक वहाँ से निकले। एक बोला—''अरे भाई! जरा देखो तो! यह वृक्ष कैसा सुंदर है, इस पर कैसी सुंदर लता पुष्पित हो रही है। आओ इसके नीचे थोड़ी देर विश्राम करें।'' अपना महत्त्व लता के साथ है, यह जानकर वृक्ष का अभिमान भी नष्ट हो गया। साथ-साथ रहने से ही सबकी प्रगति होती है।

पशुता का त्याग ही है पशुबलि



धर्म, यज्ञ, अनुष्ठान आदि के नाम पर पशुओं की बलि देने की घटनाएँ अक्सर देखने-सुनने को मिलती हैं। धर्म के नाम पर पशुओं की बलि उचित है या अनुचित? अक्सर इसके पक्ष एवं विपक्ष में हमें तर्क-कुतर्क देखने व सुनने को मिलते हैं, पर आखिर पशुबलि, पशुवध को उचित माना जाए या अनुचित? इसे उचित मानने वालों के अपने तर्क हैं, कुतर्क हैं। जाहिर है इसके पीछे उनके अपने निजी स्वार्थ हैं और साथ ही इसके पीछे उन्हें शास्त्रों व धर्म का वास्तविक ज्ञान न होना भी प्रमुख कारण है।

शास्त्रीय व व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में समाज में अक्सर ऐसी कई मूढ़मान्यताएँ पनपती व विकसित होती रहती हैं, पर समाज के व मानवता के व्यापक हित में ऐसी मूढ़परंपराओं का खंडन आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। इसलिए शास्त्रों के वास्तविक मर्मज्ञ ऋषियों, संतों, मुनियों आदि ने शुरू से ही ऐसी मूढ़परंपराओं का खंडन किया है एवं उन्हें व्यक्ति एवं समाज के लिए अनुचित बताया है। हिंसा से समाज में हिंसा का ही जन्म हो सकता है। धर्म तो धारण करने की चीज है। धर्म तो मनुष्य के मनुष्योचित स्वभाव का ज्ञान है।

फिर धर्म में पशुबलि जैसे अधार्मिक कृत्य के लिए कोई स्थान कैसे हो सकता है? किसी भी वस्तु के स्वाभाविक गुणों को उसका धर्म कहते हैं। हर वस्तु का अपना धर्म है। जैसे कि ऊष्मा अग्नि का धर्म है, तपना सूर्य का धर्म है, शीतलता जल का धर्म है, बहना वायु का धर्म है। वैसे ही मनुष्यता ही मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्यता ही मनुष्य का धर्म है।

इसलिए वेद कहता है—मनुर्भव! (ऋग्वेद-10-53-6) अर्थात मनुष्य बन जाओ। अस्तु धर्म तो मनुष्य-को-मनुष्य बनाने का विधान है, मनुष्य को हिंसक, हत्यारा बनाना या अमानवीय कृत्यों के लिए प्रेरित करना धर्म नहीं हो सकता। धृति (धैर्य), क्षमा, दम (मन को वश में करना), अस्तेय (मन, वचन, कर्म से) दूसरे के धन का, पदार्थ का लालच न करना।

शौच (शरीर, मन, बुद्धि को पवित्र रखना), इंद्रियनिग्रह, धी (बुद्धिमान बनना) अर्थात प्रत्येक कर्म को सोच-विचार कर करना, विद्या (सद्ज्ञान ग्रहण करना), सत्य (सत्य बोलना, सत्य का आचरण करना), अक्रोध (क्रोध न करना एवं क्रोध को वश में करना) आदि धर्म के 10 लक्षण बताए गए हैं। इनमें कोई भी लक्षण पशुबलि जैसे कृत्य को जायज या सही नहीं ठहराता। अत: जाहिर है कि यह कृत्य अधार्मिक है और धर्म की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

शास्त्रों में तो शाश्वत सुख पाने के मार्ग बताए गए हैं। हिंसा को पाप की श्रेणी में रखा गया है; क्योंकि जो चीज हमें अपने लिए पसंद नहीं, उसे दूसरों के साथ करना कैसे उचित हो सकता है? पुराणों में परोपकार को पुण्य एवं दूसरों को पीड़ा देने को ही पाप कहा गया है। अस्तु पशुवध, पशुबलि को उचित मानने वालों का यह कहना कि यज्ञ अथवा विशेष धर्म-अनुष्ठान में पशुबलि को जायज ठहराया गया है, बिलकुल गलत है। यह कहना या मानना कि यज्ञ में या धर्म-अनुष्ठान विशेष में बलि देने से देवता प्रसन्न होते हैं, भगवान प्रसन्न होते हैं, बिलकुल गलत धारणा है।

यह सत्य है कि शास्त्रों में यज्ञ में, धर्म-अनुष्ठान में 'बलि' देने की बातें कही गई हैं, पर इसका पशुओं की बलि से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं है। शास्त्रों में वर्णित 'पशुबलि' का दार्शनिक, वैज्ञानिक व व्यावहारिक अर्थ व तात्पर्य 'पशुओं की बलि' से नहीं, बल्कि पशुता की बलि से है; पाशविक प्रवृत्ति की बलि से है।

यहाँ 'पशु' शब्द का तात्पर्य मनुष्य के अंदर निहित 'पशुता' अथवा 'पाशविक प्रवृत्ति' से है और 'बलि' का आशय 'बलिदान' से है, त्याग से है। इस प्रकार 'पशुबलि' का तात्पर्य 'पशुता' अथवा 'पाशविक प्रवृत्ति' जैसी बुराइयों की बलि देने से है अर्थात उसका आशय बलिदान, त्याग या परित्याग से है। पशुता का त्याग करने से ही मनुष्य वास्तव में मनुष्य हो सकता है अन्यथा पशु और मनुष्य में क्या अंतर रह जाता है।

शास्त्र, पुराणों में या अन्य धर्म-संप्रदायों के धार्मिक ग्रंथों में जो भी धार्मिक कृत्य, यज्ञ, अनुष्ठान आदि बताए गए हैं, वे मनुष्य-को-मनुष्य बनाने के लिए ही हैं। वे मनुष्य को दिव्य बनाने के लिए हैं, मनुष्य को देवता बनाने के लिए हैं। जब मनुष्य में करुणा, प्रेम, संवेदना, क्षमा, त्याग, साहस आदि दिव्य गुण, दैवी गुण विकसित हो जाते हैं तब मनुष्य वास्तव में दिव्य बन जाता है, देवता बन जाता है। वह पेट, प्रजनन व परिवार की संकीर्ण सीमा को पार कर समष्टिगत हित में सोचने लगता है।

दैवी गुणों के अभाव में मनुष्य आकृति से मनुष्य जैसा दीख सकता है, पर वस्तुतः प्रकृति से वह मनुष्य नहीं हो सकता है। वह पशु ही हो सकता है। समाज में आएदिन जो हिंसा, हत्या, लूट, बलात्कार, अनाचार, भ्रष्टाचार की घटनाएँ सामने आती हैं, उनके पीछे मनुष्य का प्रकृति से, प्रवृत्ति से मनुष्य न होना ही तो मूल कारण है। मनुष्य में जब तक पशुता है, पाशविक प्रवृत्ति है; तब तक वह मनुष्य होकर भी मनुष्य नहीं है; क्योंकि उसमें मानवीय गुणों का अभाव है।

ऐसे लोग व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के लिए हमेशा ही समस्याएँ व परेशानियाँ पैदा करने वाले होते हैं। आज पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर हिंसा, अपराध, आतंकवाद, अशांति, युद्ध, कटुता आदि जो समस्याएँ बनी हुई हैं—इनके पीछे मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति ही तो मूल कारण है। इस पाशविक प्रवृत्ति के रहते हुए व्यक्ति में, परिवार में, समाज में, राष्ट्र में, विश्व में—सुख, शांति, समृद्धि, सेवा, सद्भाव, प्रेम आदि की कल्पना नहीं ही की जा सकती है। अस्तु व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व आदि सबमें सुख, शांति, प्रेम व आनंद का साम्राज्य हो, इस हेतु मनुष्य को पाशविक प्रवृत्ति से मुक्त होना व करना आवश्यक है।

इस पशुता व पाशविक प्रवृत्ति से मनुष्य को मुक्त कर उसे दिव्य व देवता बनाने मात्र के लिए ही सारे धर्म-अनुष्ठान, यज्ञ एवं धार्मिक कृत्य बने हैं, बनाए गए हैं। अस्तु मनुष्य में हिंसा की भावना भरकर उसे पशुतुल्य बनाने वाली 'पशुवध, पशुबलि' जैसी मूढ़परंपराओं का समर्थन शास्त्र कर ही नहीं सकते। कई बार ऐसी मूढ़परंपराओं के पनप जाने पर लोग अंधाधुंध उनकी नकल करने लगते हैं व शास्त्रीय ज्ञान के अभाव में उसे अवैज्ञानिक व अव्यावहारिक, असामाजिक व अशास्त्रीय होते हुए भी उचित मान बैठते हैं।

अहिंसा को परम धर्म मानने वाले महापुरुष व शास्त्र इसका समर्थन कैसे कर सकते हैं? इसलिए संत कबीर, रैदास, तुलसी, नानक, महावीर, गौतम आदि सभी महापुरुषों ने ऐसी मूढ़परंपराओं को अनुचित व अव्यावहारिक बताया है। भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा है कि यज्ञ बुरे नहीं, परंतु यज्ञों के नाम पर होने वाली हिंसा बुरी है। यह हिंसा मानव जाति के लिए हानिकारक है और समाज को हिंसक बनाकर जीवन को अस्त-व्यस्त कर देने वाली है।

उसी प्रकार भगवान गौतम बुद्ध ने भी यज्ञ का विरोध नहीं किया, बल्कि यज्ञ के नाम पर होने वाली हिंसा, पशुबलि आदि का विरोध किया। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने पशुबलि जैसी मूढ़परंपराओं को मिटाने के लिए विवेकसम्मत, वैज्ञानिक दृष्टि व शास्त्रीय दृष्टि विकसित किए जाने पर जोर दिया है। साथ ही कहा है कि मनुष्य उपासना, साधना, आराधना की त्रिवेणी में नित्य स्नान कर अपने भीतर सोए देवत्व को अर्थात करुणा, प्रेम, संवेदना आदि दिव्य भावों को जगाकर न सिर्फ पाशविक प्रवृत्तियों से मुक्त हो सकता है, बल्कि वह दिव्य हो सकता है, देवता हो सकता है और यह धरा स्वर्ग बन सकती है।

शास्त्रों में वर्णित पशुबलि का तात्पर्य पाशविक प्रवृत्ति के त्याग या बलिदान से ही है। अस्तु शास्त्र की आड़ में, धर्म की आड़ में पशुबलि जैसे कृत्य अधार्मिक, अशास्त्रीय, अवैज्ञानिक, अव्यावहारिक व अनुचित हैं। हर हाल में इनका खंडन होना ही चाहिए। यह किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। जो प्रभु करुणासिंधु हैं, आनंदस्वरूप हैं, प्रेमस्वरूप हैं—वे भला हिंसा से, पशुबलि से कैसे प्रसन्न हो सकते हैं?

वे तो सभी प्राणियों के पिता हैं, फिर कोई पिता किसी प्राणी की हिंसा या हत्या से कैसे प्रसन्न हो सकता है? पशुबलि को लेकर गुरु नानकदेव से जुड़ा एक रोचक प्रसंग है। अपने प्रथम प्रचार के दौरान एक बार गुरु नानकदेव ने लाहौर पहुँचकर जवाहरमल के चौहटे में एक कुएँ के पास पीपल के पेड़ के नीचे अपना डेरा डाल दिया। जब प्रातःकाल (अमृतवेला) का समय हुआ तो वे स्नान आदि से निवृत्त होकर प्रभुचरणों में लीन हो गए, परंतु कुछ लोग वहाँ पर पशुओं का वध करने लगे। पशुओं की चीख-चिल्लाहट सुनकर गुरु नानकदेव की समाधि में बाधा उत्पन्न हुई।

अमृतवेला का समय निरर्थक होता जानकर वे बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने देखा कि पशुओं की बलि देकर एक व्यक्ति कलमा पढ़कर यह दावा कर रहा है कि उसे कुरबानी का पुण्य प्राप्त हुआ है तथा मारे गए पशुओं को जन्नत नसीब हुई है। गुरु नानकदेव ने इसका कड़ा विरोध करते हुए कहा कि अपने स्वार्थ के लिए जीवों की हत्या करना पाप है तथा यह सब उस समय दुगना हो जाता है, जब हत्याओं को उचित दरसाने के लिए कुछ लोग इसे धार्मिक कृत्य घोषित करने या इससे पुण्य मिलने का दावा करते हैं।

यह कैसी मान्यता है कि प्रभु के बनाए जीवों की हत्या को पुण्य मानकर अपने आप को धोखा दिया जाता है। परमात्मा सब जीवों के पिता हैं। फिर कोई पिता अपनी संतान की हत्या के कृत्य से भला कैसे प्रसन्न हो सकता है? अस्तु इस प्रकार हम देखते हैं कि पशुबलि का तात्पर्य अपने अंदर निहित 'पशुता' या 'पाशविक' प्रवृत्ति की बलि से है, त्याग से है, बलिदान से है। धर्म या यज्ञ के नाम पर पशुबलि की परंपरा अधार्मिक है, अवैज्ञानिक है, अशास्त्रीय है, अतार्किक है, अव्यावहारिक है। ❑

समस्त साधनाओं का सार है ध्यान



साधना-पद्धतियों में ध्यान की महत्ता सर्वोपरि है। सभी धर्म-संप्रदायों की पूजा-पद्धतियों में ध्यान किसी-न-किसी रूप में जुड़ा हुआ है। हम राजयोग, हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि किसी भी साधनात्मक मार्ग का अवलंबन क्यों न कर रहे हों, उनमें ध्यान की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

ईश्वर की प्राप्ति के लिए हम जिस किसी भी मार्ग का अवलंबन करते हैं, उसमें ध्यान की महती भूमिका होती है। राजयोग की शुरुआत यम, नियम से होती है और तत्पश्चात आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा आदि के द्वारा मन की मलिनता को मिटाया जाता है, चित्त की चपलता एवं चंचलता पर नियंत्रण साधा जाता है।

मन की मलिनता के मिटते ही मन ध्यान के लिए तैयार होने लगता है और क्रमशः ध्यान एवं समाधि के लिए उपयुक्त हो जाता है और तभी मन ध्यान-समाधि में डूबता है एवं साधक के लिए भगवद्दर्शन व मोक्ष की संभावनाएँ साकार होने लगती हैं।

हठयोग-साधना की शुरुआत हम षट्कर्म से करते हैं। हम आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध आदि हठयौगिक क्रियाएँ करते हैं, पर इन सबका उद्देश्य भी शरीर शुद्धि करते हुए मन को शुद्ध व क्रमशः नियंत्रित करना होता है। हठयोग प्राण पर नियंत्रण करके मन पर नियंत्रण करता है और तभी साधक इससे आगे ध्यान-समाधि में लीन हो सकता है।

लययोग में मन का लय नादब्रह्म में तभी संभव हो पाता है, जब मन की चपलता, मन की चंचलता, चित्त की वृत्तियाँ शांत हो गई हों, समाप्त हो गई हों अन्यथा मन का लय कैसे संभव है? मंत्रयोग की साधना करते हुए भी मन को मंत्र के देवता व इष्ट में लगाना होता है।

यदि मन मंत्र के देवता व इष्ट में न लगा तो मंत्रयोग की साधना भी सफल न हो सकेगी। मंत्र मंत्रयोग न होकर कुछ शब्दों का उच्चारण मात्र बनकर रह जाएगा। ज्ञानयोग की साधना तभी सफल हो सकेगी, जब हमें हर पल प्रभु की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता का बोध हो।

हमें हर पल संसार की असारता व ईश्वर की शाश्वतता का बोध हो, हमें हर पल भौतिक सुख साधनों, इंद्रियजन्य सुखों की क्षणभंगुरता, अतृप्तता व शाश्वत सुख में मिलने वाली स्थायी तृप्ति का बोध हो एवं हमें भोग से प्राप्त दुःख व योग से मिलने वाले आनंद का बोध हो।

कर्मयोग की साधना में भी ध्यान आवश्यक है। हमारा हर कर्म निष्काम हो। हमारा प्रत्येक कर्म शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य से परे हो। तभी हमारे कर्म निष्काम हो सकेंगे। निष्काम कर्म, फलासक्ति से मुक्त कर्म, कर्त्तापन की भावना से मुक्त कर्म ही ईश्वर को अर्पित किए जा सकेंगे।

ऐसा तभी संभव है, जब हमारी इंद्रियाँ तो कर्म करती रहें, पर हमारा मन ईश्वर में लगा रहे अन्यथा मात्र इंद्रियों से किए गए कर्म निष्काम न हो सकेंगे। मन को ईश्वर में लगाए बिना मात्र इंद्रियों से किए गए कर्म निष्काम न हो सकेंगे और वैसे कर्म हमारे चित्त में फिर से नए संस्कार, प्रभाव पैदा करेंगे और वे संस्कार पुनः हमारे चित्त को चंचल बनाएँगे और तब हमारे चित्त में फिर से विभिन्न कर्मों के संस्कार उत्पन्न होंगे।

इस प्रकार हमारा चित्त परमात्मा में कैसे लग सकेगा? तब हमारा मन परमात्मा के ध्यान में कैसे डूब सकेगा? फिर हमारी कर्मयोग की साधना कैसे सफल हो सकेगी? भक्तियोग की साधना में भी यदि भक्त का मन चंचल है और उसका मन प्रभु में नहीं, वरन विषयों में डूबा है तो फिर यह उसकी कैसी भक्ति? कैसा भक्तियोग? ऐसी अवस्था में तो वह भक्ति से कोसों दूर होता है।

भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम है, परम अनुराग है और यदि मन सांसारिक विषयों के चिंतन में डूबा है तो वह प्रभु के प्रेम में कैसे डूब सकेगा? हाँ! नित्य-निरंतर भक्ति के अभ्यास से मन जब शुद्ध होने लगेगा, मन शांत होने लगेगा, मन का विषयों से अनुराग मिटने लगेगा, तभी मन प्रभु के प्रेम में, अनुराग में डूबता, उतराता व मिटता चला जाएगा।

यज्ञ जैसी कर्मकांडीय क्रियाएँ करते हुए भी मन यदि भगवान में लगा हो, डूबा हो तभी वह यज्ञ वास्तव में यज्ञ कहलाता है, अन्यथा वह मात्र कर्मकांड बनकर रह जाता है। सनातन धर्म की साधना-पद्धतियों में ही नहीं, बल्कि अन्यान्य साधना-पद्धतियों, पूजा-पद्धतियों में भी ध्यान की महती भूमिका है। उदाहरणस्वरूप यदि भगवान की स्तुति करते हुए मन भगवान के बजाय संसार के चिंतन में ही लगा रहे तो फिर वह स्तुति कैसी? वह पूजन-कृत्य हमें भगवान से कैसे जोड़ सकते हैं।

तब तो वह पूजन हाथ-पैर चलाने, घुमाने वाली एक क्रिया भर बनकर रह जाएगा। तब तो वह आत्मप्रवंचना व बाह्य आडंबर मात्र बनकर रह जाएगा। इस संबंध में एक बड़ा ही रोचक प्रसंग है। एक बार गुरु नानकदेव सुल्तानपुर पहुँचे। उनके प्रति लोगों की श्रद्धा देखकर वहाँ के काजी को ईर्ष्या हुई। उसने नानकदेव के खिलाफ सूबेदार दौलत खाँ के खूब कान भरे और कहा—''यह कोई पाखंडी है, जो लोगों को बहकाता है। सूबेदार ने गुरु नानकदेव को बुलावा भेजा, किंतु उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया।'' दोबारा सिपाही के आने पर वे गए तो सूबेदार ने डाँटते हुए उनसे पूछा—''पहली बार बुलाने पर आप क्यों नहीं आए?''

गुरु नानकदेव ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया—''मैं खुदा का बंदा हूँ, तुम्हारा नहीं।'' सूबेदार ने कहा—''अच्छा! तो क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है कि किसी से मिलने पर पहले उसे सलाम किया जाता है?'' गुरु नानकदेव ने कहा—''मैं खुदा के अलावा और किसी को सलाम नहीं करता।'' तब क्रोधित होकर सूबेदार बोला—''तब फिर खुदा के बंदे! मेरे साथ नमाज पढ़ने चल।'' गुरु नानकदेव उसके साथ मसजिद गए। सूबेदार और काजी नीचे बैठकर नमाज पढ़ने लगे। मगर गुरु नानकदेव वैसे ही खड़े रहे।

वे पास में नमाज अदा कर रहे सूबेदार एवं काजी आदि लोगों को ध्यानपूर्वक देखने लगे। कुछ ही देर में गुरु नानकदेव ने यह भाँप लिया कि उन लोगों का ध्यान नमाज में नहीं, कहीं और है। अतः वे हँस पड़े। जब नमाज समाप्त हुई तो सूबेदार ने गुरु नानकदेव से पूछा—''तुम तो कहते थे कि तुम नमाज पढ़ोगे, तुम खुदा के बंदे हो, पर तुम तो नमाज पढ़ते समय खड़े रहे हो। नमाज क्यों नहीं पढ़ी?'' गुरु नानकदेव बोले—''मैं किसके साथ नमाज पढ़ता?'' ''मेरे साथ! मेरे साथ पढ़ते, मैं तो नमाज पढ़ रहा था।''—सूबेदार ने कहा।

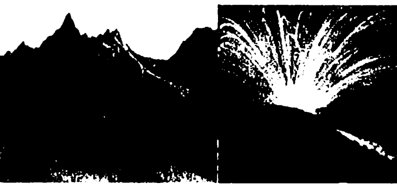
गुरु नानकदेव बोले—''नहीं, बिलकुल नहीं। आप नमाज पढ़ ही नहीं रहे थे; क्योंकि आपका मन नमाज में था ही नहीं। आपका मन तो दूर काबुल नगर में चला गया था और वहाँ जाकर के अच्छी नस्ल के घोड़े खरीद रहा था। आपका शरीर ही यहाँ पर नमाज पढ़ने का अभिनय कर रहा था।'' यह सत्य जानकर नवाब शांत हो गया और मन-ही-मन लज्जित भी, पर काजी कहने लगा—''नानकदेव! तुम मेरे साथ नमाज पढ़ लेते।''

गुरु नानकदेव हँसे और बोले—''काजी साहब! आप भी नमाज कहाँ पढ़ रहे थे? आप तो नमाज पढ़ते हुए यह सोच-सोचकर खुश हो रहे थे कि आपने मुझे मसजिद में लाकर बड़ा तीर मार लिया है। साथ ही आप यह भी विचार कर रहे थे कि कहीं घर में घोड़ी का नवजात बच्चा पास के कुएँ में न गिर जाए।'' यह सत्य जानकर काजी हैरान-परेशान हुआ और लज्जित भी। काजी और सूबेदार, दोनों शरमिंदा हुए और वे गुरु नानकदेव के चरणों में गिरकर उनसे क्षमा माँगने लगे। गुरु नानकदेव ने उन्हें क्षमा करते हुए प्रार्थना के स्थूलकृत्य के साथ ही उसमें प्रयुक्त होने वाले ध्यान की महती भूमिका के संबंध में बताया व उन्हें उसका सूत्र समझाया।

मात्र कर्मकांड संपन्न कर लेने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो जाता। कर्मकांड करते हुए मन का ईश्वर में लगा होना आवश्यक है, तभी वह उपासक के लिए सफल है अन्यथा नहीं। मंदिर में भगवान का अभिषेक करते हुए, पूजन करते हुए, आरती वंदन करते हुए भी यदि हमारा मन भगवान में नहीं लगा है तो हमारे द्वारा की गई क्रियाएँ मात्र क्रियाएँ व कर्मकांड ही कहलाएँगी। उसी प्रकार देवालय में ईश्वर के समक्ष उनसे प्रार्थना करते हुए हमारा ध्यान उनमें लगा होना ही चाहिए। प्रार्थना करते हुए हमारा मन, चिंतन, ध्यान प्रभु में होना ही चाहिए, अन्यथा प्रार्थना के रूप में जिह्वा से कुछ शब्दों का उच्चारण मात्र करने से क्या लाभ?

प्रार्थना में प्राण तो तभी आएँगे, जब प्रार्थना करते हुए हमारा मन परमात्मा में लगा हो, डूबा हो। सारतत्त्व यही है कि ध्यान सभी साधना-पद्धतियों का सार है, निष्कर्ष है। ध्यान विभिन्न प्रकार की पूजा-पद्धतियों का नवनीत है, निष्कर्ष है। ध्यान मोक्ष, मुक्ति, भगवत्प्राप्ति का प्रवेशद्वार है। ध्यान शाश्वत सुख, शांति, सौंदर्य व सौभाग्य का राजमार्ग है। सचमुच समस्त साधनाओं का सार है—ध्यान। ❑

विश्व के अद्भुत प्राकृतिक आश्चर्य



इस धरती पर प्रकृति द्वारा निर्मित कितनी सारी संरचनाएँ ऐसी हैं, जिनको देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाना पड़ता है। ऐसा लगता है कि जैसे स्रष्टा ने विशेष कलाकारिता के साथ इनका सृजन किया है।

प्रस्तुत हैं सात ऐसे ही प्रकृति के शीर्ष आश्चर्य, जो पृथ्वी के विभिन्न कोनों में विद्यमान हैं और जिन्हें हर जिज्ञासु इनसान एक बार अवश्य देखना चाहेगा और उनमें निहित तथ्यों का अनुसंधान भी अवश्य करना चाहेगा।

उत्तरी ध्रुव के क्षेत्रों के आसमान में तैरता-खेलता, नृत्य करता रंग-बिरंगा प्रकाश औरोरा बोरिएलिस एक ऐसा ही प्राकृतिक आश्चर्य है। अलौकिकता का स्पर्श करती यह अद्‌भुत रोशनी एक रोमन देवी के नाम पर है।

यह पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव में रात के समय या प्रातः घटने वाली एक अद्‌भुत प्राकृतिक घटना है, जिसमें हरे-लाल और नीले रंग का प्रकाश आसमान में नर्तन करता है और जिसकी रोशनी से कुछ पलों के लिए पूरा आकाश जैसे पट जाता है।

इसे पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में अलास्का, कनाडा के उत्तरी भागों, ग्रीनलैंड, आइसलैंड, स्वीडन और फिनलैंड में देखा जा सकता है। क्षेत्रीय लोग इसमें पितर आत्माओं की उपस्थिति को देखते हैं; जबकि वैज्ञानिकों के अनुसार यह रोशनी पृथ्वी के वायुमंडल पर गैसीय कणों और सूर्य से आने वाले आवेशित कणों के टकराने से पैदा होती है।

जितना हम उत्तरी ध्रुव में आर्कटिक वृत्त की ओर बढ़ते हैं, उतना ही इस प्रकाश की सघनता बढ़ती जाती है। पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र के कारण रोशनी लगातार अपना आकार बदलती रहती है। हालाँकि यह वर्ष भर प्रकट होती है, लेकिन सरदियों के अँधेरे आकाश में यह अधिक स्पष्टता से दृष्टिगोचर होती है। औरोरा बोरिएलिस का विस्तार 80 किलोमीटर से 640 किलोमीटर तक देखा गया है।

इसी तरह 8848 मीटर या 29029 फीट ऊँचाई लिए विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत माउंट एवरेस्ट शीर्ष प्राकृतिक आश्चर्यों में शामिल है।

हिमालयी क्षेत्र में स्थित इस पर्वत को नेपाल में सागरमाथा तथा तिब्बत में चोमोलूंगमा कहकर पुकारते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ विश्व की दिव्य मातृशक्ति से है। क्षेत्रीय लोगों के लिए यह एक बहुत पावन पर्वत है। इसका विस्तार नेपाल और तिब्बत में है, लेकिन इसकी चोटी नेपाल के भू-क्षेत्र में पड़ती है।

ब्रिटेन के सर्वेयर जनरल जॉर्ज एवरेस्ट के नाम पर इस चोटी को माउंट एवरेस्ट कहा जाता है। माना जाता है कि हिमालय की उत्पत्ति 5 करोड़ वर्ष पूर्व यूरेशियाई और भारतीय प्लेट के बीच टकराहट के परिणामस्वरूप प्राचीन टेथिस सागर के बीच से हुई थी और इसका उभार अभी भी जारी है।

इसकी ऊँचाई प्रतिवर्ष 4 मिलीमीटर की दर से बढ़ रही है। यह पर्वत जहाँ पर्वतारोहियों के लिए एक मानक स्वप्न जैसा है तो वहीं वायुयान से इसके निकट से अवलोकन का एक रोमांच भरा आनंद लिया जा सकता है। साहसी पर्यटक इसके बैस कैंप तक ट्रैकिंग करते हैं व समीप से इसके विराट वैभव की झलक पाते हैं। नेपाल के किसी समीपस्थ पर्वतीयस्थल से भी माउंट एवरेस्ट के दूरदर्शन किए जा सकते हैं।

दक्षिण अमेरिका के मेक्सिको में स्थित पारिकुटिन ज्वालामुखी भी विश्व के शीर्ष प्राकृतिक आश्चर्यों में शुमार है, जिसका कारण मनुष्य का इसके जन्म का साक्षी होना और इनके समक्ष इसका विकसित होना है। शंकु आकार का यह ज्वालामुखी 2800 मीटर की ऊँचाई लिए हुए है। यह उत्तरी गोलार्द्ध का सबसे युवा ज्वालामुखी है।

यह सन् 1943 में अस्तित्व में आया था, जब मक्के के समतल खेत से यह प्रकट हुआ था। इसके बाद इसमें लगातार 9 वर्षों तक विस्फोट होते रहे व यह लावा उगलता रहा और सन् 1952 में यहाँ अंतिम बार विस्फोट देखा गया और अब यह ज्वालामुखी शांत है और एक पर्यटकीय आकर्षण है। जमीन से 410 मीटर ऊपर इस ज्वालामुखी का कठोर लावा 16 वर्ग किमी० और इसकी ज्वालामुखी रेत 32 वर्गकिमी० के दायरे में फैली हुई है।

इसके लगभग 19 किमी० लंबे घेरे को पार करते हुए पैदल या घोड़े पर इसकी चोटी तक यात्रा की जा सकती है, जिसके मार्ग में रेतीले तट और लावा के जमे हुए प्रवाह को देखा जा सकता है।

ग्रेंड कैन्यन अमेरिका के एरिजोना राज्य में स्थित प्राकृतिक संरचना का एक ऐसा खूबसूरत नजारा है, जो विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है। 1.83 किमी० गहरी, 29 किमी० चौड़ी और 446 किमी० लंबी यह संरचना अमेरिका का सबसे बड़ा पर्यटकीय आकर्षण है। माना जाता है कि यह घाटी कोलोरेडो नदी के बहाव से लाखों वर्ष पहले बनी होगी।

इसकी लाल रंग की परतदार चट्टानें न केवल अपनी अद्भुत सुंदरता के कारण चकित करती हैं, बल्कि इनकी गहराई व आकार भी लोगों को अचंभित करते हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि इस जगह की चट्टानें पृथ्वी के भूगर्भीय काल के कई राज खोल सकती हैं। मालूम हो कि यह घाटी ग्रेंड कैन्यन नेशनल पार्क से घिरी हुई है, जो अमेरिका के सबसे पहले राष्ट्रीय उद्यानों में से एक है।

कुछ लोग इसकी झलक मात्र से संतुष्ट हो जाते हैं, लेकिन शरीर से स्वस्थ व सबल लोग इसमें बनी कई पैदल पगडंडियों (हाइकिंग ट्रेल) में भ्रमण का आनंद ले सकते हैं, नदी में नौका विहार का लुत्फ भी ले सकते हैं; जबकि हेलीकॉप्टर में आसमान से इस अद्भुत रचना के दिग्दर्शन को जीवन के यादगार पलों में शामिल कर सकते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में स्थित विक्टोरिया फॉल एक विराट जलप्रपात है, जो प्रकृति की एक अद्भुत संरचना है। इससे ऊँचे व चौड़े दूसरे जलप्रपात हो सकते हैं, लेकिन इसकी जलराशि का कोई सानी नहीं। इसकी चौड़ाई 1.7 किलोमीटर है और ऊँचाई 108 मीटर है तथा हर मिनट इससे 50 करोड़ लीटर पानी झरता रहता है।

इसकी विशालता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसे 50 किलोमीटर दूर से भी देखा जा सकता है। स्थानीय भाषा में इसे मोसी-ओ-तुन्या कहा जाता है। जाम्बिया और जिंबाबे की सीमा रेखाओं पर स्थित यह जलप्रपात जांबेजी नदी का निर्माण करता है। जिंबाबे की ओर से इसके सर्वश्रेष्ठ दर्शन किए जा सकते हैं, हालाँकि जांबिया की ओर से इसके नजदीकी दर्शन होते हैं।

साहसी लोग तो नाव में इसके गिरने के किनारे तक जा पहुँचते हैं। यह जलप्रपात इससे उठने वाले धुआँधार जल की छोटी-छोटी बूँदों के लिए जाना जाता है। यहाँ का नजारा तब विशेष रूप से दर्शनीय रहता है, जब इसके जलकणों में झिलमिलाते इंद्रधनुष देखने को मिलते हैं। बरसात के मौसम के बाद इसका नजारा विशेष रूप से दर्शनीय रहता है, जब इसमें जल की राशि पर्याप्त विशाल रहती है और मौसम भी खुशनुमा रहता है।

अमेरिका के पूर्वी कैलिफोर्निया में स्थित डेथवैली भी प्रकृति का एक विलक्षण आश्चर्य है। कुछ इसे मौत की घाटी तो कुछ इसे नरक का द्वार तक कहते हैं। 31 लाख एकड़ विशाल क्षेत्र में फैली हुई यह घाटी उत्तरी अमेरिका का सबसे गरम और सूखा स्थल है। इसका तल सबसे नीचा है, जिसका सबसे निचला स्थल समुद्र तल से 46 मीटर अर्थात 282 फुट नीचे है। यहाँ का तापमान अपने चरम पर सत्तावन डिगरी सेंटीग्रेड तक भी मापा गया है।

यह घाटी इसलिए अधिक गरम रहती है, क्योंकि इसकी सतह लाल रंग की चट्टानों की प्रधानता लिए हुए है। यह सतह गरमी को वापस तो भेज देती है, लेकिन वह घाटी से बाहर नहीं निकल पाती, जिस कारण घाटी की हवा बेहद गरम हो जाती है। यहाँ की गरम हवा खड़ी पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी हुई है, जो घाटी की गहराई में गरमी को रोक लेती हैं।

ग्रेट बैरियर रीफ ऑस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड के पूर्वोत्तर तट में फैली हुई दुनिया की सबसे बड़ी और विलक्षण मूँगे की चट्टानों के लिए प्रख्यात है, जो जीवों द्वारा निर्मित विश्व की सबसे बड़ी एकल संरचना है। इसमें 3000 से अधिक व्यक्तिगत रीफ सिस्टम हैं।

यह विश्व विरासत में सूचीबद्ध स्थलों में से एक है। इसे पृथ्वी का सबसे बड़ा प्राकृतिक आश्चर्य माना जाता है, जो 2600 किलोमीटर के दायरे में 344,400 वर्गकिमी० क्षेत्र तक फैला हुआ है तथा 900 से अधिक द्वीपों से मिलकर बना हुआ है।

इस विशाल संचरना को आकाश से भी देखा जा सकता है। इसके आस-पास मछलियों की 15 सौ और व्हेल तथा डॉल्फिन की 30 से अधिक प्रजातियाँ पाई जाती हैं। नाव के साथ इन शैलों का निकटता से दर्शन होता है। इसमें गोताखोरी भ्रमण के साथ मछलियों, प्रवाल और समुद्री जीवन के दिग्दर्शन किए जा सकते हैं।

यह क्षेत्र जैव-विविधता की दृष्टि से विश्व के सबसे समृद्ध क्षेत्रों में से एक है। हालाँकि पर्यटकों की भीड़ एवं मौसम परिवर्तन की मार इस प्राकृतिक आश्चर्य पर पड़ रही है, लेकिन इसके संरक्षण के प्रयास भी जारी हैं। ब्राजील में स्थित रियो डि जनेरियो का बंदरगाह सबसे गहरे जल का बंदरगाह है। ब्राजील के दक्षिण-पूर्व में स्थित यह प्राकृतिक संरचना जल की मात्रा के आधार पर विश्व की सबसे बड़ी प्राकृतिक खाड़ी है, अत: इसे विश्व के सात प्राकृतिक आश्चर्यों में शामिल किया गया है।

यह ग्रेनाइट पर्वतों और शुगर लोफ पर्वत, कोर्कोवडो चोटी और तिजुका पहाड़ियों जैसे कई शिखरों से घिरा हुआ है। यह अटलांटिक महासागर द्वारा अपरदन के फलस्वरूप तैयार हुआ बंदरगाह है। हेलीकॉप्टर में आकाशीय मार्ग से इसके विस्मयकारी दृश्यों का अवलोकन किया जा सकता है। इस बंदरगाह को इतने तरीकों से देखा जा सकता है कि यह हर बार अलग तरह से दिखाई देता है और देखने वाले को भ्रमित करता है। पहाड़ खाड़ी में प्रवेश द्वार बनाते हैं और इसे झील का रूप देते हैं।

हालाँकि सन् 1502 में जब पुर्तगाली खोजकर्त्ता यहाँ पहुँचे थे तो उनका मानना था कि खाड़ी एक नदी रही होगी और उन्होंने सम्मान के तौर पर इसे रियो डि जनेरियो अर्थात जनवरी की नदी का नाम दिया, क्योंकि वे जनवरी माह में यहाँ पहुँचे थे।

इस प्राकृतिक आश्चर्य को देखने का पारंपरिक तरीका ग्रेनाइट चोटियों के शिखर से इसका विहंगावलोकन है। यहाँ से टापू में स्थित सुंदर समुद्री तट का दर्शनीय नजारा पेश होता है। विदित हो कि यहाँ कोर्कोवडो चोटी पर ईसामसीह की सबसे ऊँची भव्य प्रतिमा भी स्थित है।

इस तरह पृथ्वी के विभिन्न कोनों में स्थित इन प्राकृतिक आश्चर्यों में विविधतापूर्ण सौंदर्य के दर्शन चकित करते हैं। ईश्वर की सृष्टि की ये अद्भुत संरचनाएँ हमें सोचने के लिए मजबूर करती हैं कि उन्होंने फुर्सत में इन्हें गढ़ा होगा और जिनको देखकर दर्शक उसकी कलाकारिता का लोहा मानने के लिए बाध्य होते हैं और यही नहीं, बल्कि उन कलाकृतियों के उस अप्रतिम सौंदर्य के दर्शन कर स्वयं को धन्य अनुभव करते हैं। ❑

मधुमक्खी उड़ती-उड़ती एक फूल पर जा बैठी और मकरंद चूसने लगी। एक तितली भी पास ही मँडरा रही थी। मधुमक्खी को मकरंद चूसते देखकर उसने पूछा—"बहन! यह क्या कर रही हो?" मधुमक्खी बोली—"मैं मधु एकत्र कर रही हूँ।" तितली ताना देती हुई बोली—"तुम भी कितनी नादान हो! भला छोटे से फूल में भी कहीं मधु रखा है? बेकार समय व शक्ति जाया कर रही हो। आओ! हम दोनों मिलकर मधु का सरोवर ढूँढ़ें।" मधुमक्खी ने कुछ उत्तर नहीं दिया और अपना कार्य करती रही। उधर तितली मधु के सरोवर की खोज में सारे वन में भटकती रही। शाम को दोनों घर लौटीं तो तितली ने देखा कि वह स्वयं तो खाली हाथ है, पर मधुमक्खी का घर मधु से भर गया है। यह देखकर वह मधुमक्खी से बोली—"बहन! अब मैं समझी कि कार्य छोटा-बड़ा नहीं होता; मात्र महत्त्वपूर्ण या महत्त्वहीन होता है।" शक्ति का सही उपयोग करने में ही कार्य की सार्थकता है। विभूतियों के लालच में इधर-उधर भटकने वाले खाली हाथ रह जाते हैं और वहीं परिश्रमी सफल होते हैं।

गुणातीत महापुरुष की पहचान



विवेकशील मनुष्य प्रकृति के तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्त्ता के रूप में नहीं देखता है और स्वयं को गुणों से परे अनुभव करता है और वह सत्यस्वरूप को प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में जब मनुष्य द्रष्टा बन जाता है और इस सत्य की अनुभूति करता है कि उसकी गुणों के साथ असंगता है, तब उस समय वह परमात्मा के त्रिगुणातीत, सच्चिदानंदघनस्वरूप को तत्त्वत: जानते हुए भगवान के सत्यस्वरूप को प्राप्त होता है।

मनुष्य के जीवन में दु:ख, जन्म-मरण के चक्र में पड़ने से आते हैं। जन्म-मरण के चक्र में पड़ने का मूल कारण कर्म-संस्कारों का एकत्रित होना है और उनका इकट्ठा होना कर्त्तापन के भाव के कारण है। जैसे ही हम कर्त्तापन के भाव से मुक्त होकर साक्षीभाव से इस सृष्टि के क्रियाकलापों को देखते हैं, वैसे ही उस निरासक्ति के भाव में हम अपने मूलस्वरूप के निकट होने लगते हैं।

ज्यों-ज्यों हम अपने या यों कहें कि परमात्मा के मूलस्वरूप के निकट होने लगते हैं, इस बात को गहराई से जान व मान लेते हैं कि हम कर्त्ता नहीं, यंत्र मात्र हैं—ऐसा होते ही हम परम पुरुष को, परमेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं। विवेकी मनुष्य, देहधारी देह को उत्पन्न करने वाले इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करते हुए जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थारूपी दु:खों से रहित होकर अमरता को अनुभव करता है। यहाँ अमरता का अर्थ शरीर की नहीं, आत्मा की अमरता से है। जिस मनुष्य के भीतर अकर्त्ता का, साक्षी का, त्रिगुणातीत का भाव उत्पन्न हो जाए, फिर उसे थामने की सामर्थ्य भला किस शारीरिक विकार में है।

ऐसा मनुष्य एक स्वत:सिद्ध अमरता को प्राप्त कर लेता है। वह फिर शरीरजन्य सभी अवस्थाओं से पार व परे चला जाता है; क्योंकि वह त्रिगुणातीत बन जाता है, भावातीत बन जाता है। इस भावातीत अवस्था को उपलब्ध हो जाना ही मुक्ति है। इन तीनों गुणों से अतीत हुआ मनुष्य किन लक्षणों से युक्त होता है, उसका आचरण कैसा होता है और इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कैसे किया जा सकता है?

यह प्रश्न एक का नहीं है, वरन अनेकों का है। अनेक साधकों, व्यक्तियों, जिज्ञासुओं के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो पुरुष प्रकृति के इन तीनों गुणों से पार व परे चला गया है, वो जो भावातीत है, त्रिगुणातीत है, उसकी पहचान कैसे हो सकती है? पहला प्रश्न तो उन लक्षणों से संबंधित है, जो एक त्रिगुणातीत व्यक्ति की पहचान बन जाएँ। दूसरा प्रश्न उसके आचरण को लेकर है तो तीसरी जिज्ञासा यह है कि मनुष्य किन प्रयासों को करने से त्रिगुणातीत हो पाता है? इनको एक-एक करके समझने का प्रयत्न करते हैं।

अनेक लोगों को यह भ्रम है कि जो व्यक्ति जीवनमुक्त हो जाता है, जो व्यक्ति त्रिगुणातीत हो जाता है, वह बाहर से कुछ भिन्न हो जाता है। लक्षण कहते ही उन गुणों को हैं, जो बाहर से गिनाए जा सकें। ऐसा पूछने का एक कारण यह है कि हमने इस संसार का वर्गीकरण इस आधार पर किया है, जिसे हम देख-सुन पाते हैं। इसीलिए लोग रंग, वर्ण, गोरे-काले, शारीरिक बल, लिंग, छोटे-बड़े आधारों पर बँट गए हैं। चूँकि हमारे प्रगति के मापदंड बाहरी हैं, अत: आंतरिक जगत् के परिवर्तन को भी हम बाह्य लक्षणों के आधार पर जाँचने या मापने का प्रयत्न करते हैं।

यदि कोई व्यक्ति गुणों से पार जाता है तो यह एक आत्मिक, आंतरिक परिवर्तन है और इसका बाहरी लक्षणों से कोई संबंध नहीं है। यदि कोई आंतरिक शांति को प्राप्त करता है तो कौन-सा बाह्य लक्षण उसकी पुष्टि करता है?

हिंदी में हम दो शब्दों का प्रयोग करते हैं—आकृति व प्रकृति। आकृति बाह्य संरचना, बनावट व लक्षण का नाम है तो प्रकृति आंतरिक संरचना का। त्रिगुणातीत होने पर व्यक्ति की आंतरिक संरचना भिन्न होती है। उसके भावों का रूपांतरण होता है, परिस्थितियाँ नहीं बदलतीं, पर उसकी मन:स्थिति बदल जाती है। घटनाक्रम नहीं बदलते, पर उन घटनाक्रमों के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल जाता है।

सच यह है कि त्रिगुणातीत व्यक्ति के बाहरी लक्षण बहुत ज्यादा भिन्न नहीं होते, बल्कि कई मानों में तो वह और भी ज्यादा साधारण हो जाता है। इसी जिज्ञासा के क्रम

में दूसरा प्रश्न है कि उस त्रिगुणातीत व्यक्ति का आचरण कैसा होता है ? आचरण आंतरिक रूपांतरण की अभिव्यक्ति है। बाहर के लक्षण तो महापुरुषों के साधारण ही रहते हैं, परंतु उनके गुण, कर्म, स्वभाव व आचरण में महानता, दिव्यता व भगवत्ता परिलक्षित होती है।

कई लोग बाहर की साधारणता से भ्रमित हो बैठते हैं और ये सोचने लगते हैं कि इस व्यक्ति में तो कुछ भी विशेष दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है, पर सत्य यह है कि महापुरुषों के जीवन की असाधारणता उनके बाह्य आचरण से नहीं, वरन आंतरिक गुणों व आचरण से प्रकट होती है। बाहर से तो वे यह दिखाने का कभी प्रयत्न भी नहीं करते कि वे किसी दृष्टि से विशिष्ट हैं या उनमें कोई विशिष्ट लक्षण है। इसीलिए कई लोग परमपूज्य गुरुदेव से मिलते समय यह धोखा खा जाते थे कि बाह्य लक्षणों में तो कुछ असाधारणता नहीं दिखाई पड़ रही; जबकि सत्य यह था कि पूज्य गुरुदेव की अलौकिकता, आंतरिक रूपांतरण के कारण थी।

जो त्रिगुणातीत हो गया हो उसे बाह्य आडंबर करने की, कोई विशेष परिधान पहनने की, कोई विशेष केशविलास रखने की आवश्यकता ही क्यों पड़ेगी—ये मूर्खताएँ तो मात्र गुणों में उलझे व्यक्तियों के लिए हैं। जो त्रिगुणातीत हो गया है उसके बाहरी लक्षण, आचरण क्या होंगे एवं त्रिगुणातीत बनने का क्या उपाय है ? यह प्रश्न एक अद्भुत प्रश्न है; क्योंकि इसमें प्रश्न तीन होने के साथ-साथ उनके तल भी तीन हैं। ये तीनों प्रश्न चेतना के भिन्न-भिन्न तलों से उभर कर आए हैं। शास्त्रों में प्रश्नों के तीन तल बताए गए हैं। पहला—कौतुक या कुतूहलवश पूछा गया प्रश्न।

शास्त्र कहते हैं कि ऐसे प्रश्न बालसुलभ चपलता से उभरकर आते हैं। बच्चों के मन में एक प्रश्न उभरता है, पर वह एक कुतूहल से ज्यादा नहीं कहा जा सकता है। वो प्रश्न पूछते हैं, परंतु उसका उत्तर मिले या न मिले इससे उन्हें ज्यादा सरोकार नहीं है। वो प्रश्न मात्र पूछने के लिए पूछा गया प्रश्न है। अर्जुन का पहला प्रश्न कुछ ऐसी ही चपलता से उभरा था, इसीलिए उन्होंने दूसरे तल से दूसरा प्रश्न किया।

शास्त्र कहते हैं कि मानवीय चेतना के दूसरे तल से जिज्ञासा जन्म लेती है। जिज्ञासा माने वो प्रश्न, जिसका उत्तर जानने की इच्छा हो परंतु अभी यह प्रश्न जन्म-मरण का प्रश्न बन सका है अर्थात ऐसा प्रश्न न बन सका हो कि यदि उसका उत्तर न मिले तो व्यक्ति के लिए जीवन ही संभव न हो सके।

अर्जुन का दूसरा प्रश्न एक ऊपरी तल से था, पर तब भी एक जीवन की दिशा का निर्णायक प्रश्न नहीं था। उनका तीसरा व अंतिम प्रश्न एक जीवन-दिशा हेतु निर्धारक प्रश्न था। एक ऐसा प्रश्न कि यदि उसका उत्तर पाने की इच्छा हमारे मन में गहरी बैठ जाए तो जीवन की दिशा बदल जाती है।

प्रकाश और प्रवृत्ति तथा मोह—ये सभी अच्छी तरह से प्रवृत्त हो जाएँ तो भी गुणातीत मनुष्य इनसे द्वेष नहीं करता और ये सभी निवृत्त हो जाएँ तो इनकी इच्छा नहीं करता। ऐसा इसलिए कि उसका—गुणातीत महापुरुष का वृत्तियों के साथ राग-द्वेष चला जाता है। हमें जीवन में अनुकूलता या प्रतिकूलता अनुभव ही राग-द्वेष के कारण होती है। जहाँ राग जुड़ जाए, वहाँ अनुकूल भाव की प्रतीति होने लगती है और जिधर द्वेष का भाव जुड़ जाए, उधर प्रतिकूल भाव का अनुभव होने लगता है।

जो व्यक्ति गुणातीत हो गया है। उसके अंतस् में अनुकूल परिस्थितियाँ बनी रहें व प्रतिकूल चली जाएँ, ऐसी इच्छा नहीं पनपती। उसके अंत:करण में वृत्तियाँ आती-जाती हैं, पर वह स्वयं उनसे निर्लिप्त व निर्विकार रहता है। वृत्तियों का संबंध प्रकृति से है और वे उसके गुणों के कारण बनती व बिगड़ती हैं; जबकि हमारा संबंध परमात्मा के साथ है और जब व्यक्ति त्रिगुणातीत होकर या प्रकृति के गुणों से पार जाकर परमात्मा के सत्यस्वरूप से एकाकार हो जाता है तो उसके मन में इससे न तो अनुकूल और न ही प्रतिकूल भाव जन्म लेते हैं।

ऐसा तब ही संभव है, जब मनुष्य में एक आंतरिक एवं स्थायी परिवर्तन घटित हो गया हो। लक्षण बाहरी होते हैं और असली बात भीतर होती है, जैसे बाहर से बार-बार अभ्यास दिलाकर यदि कोई परिवर्तन थोप दिया जाए तो भी वह परिवर्तन व्यक्तित्व का अंग नहीं बन पाता है।

आज वैज्ञानिक तरीकों से व्यक्ति के हॉर्मोन्स, अंदर के केमिकल्स बदल पाना संभव है, पर ऐसा कर देने से वह व्यक्ति त्रिगुणातीत नहीं हो जाता है।

बाहर की बदलाहट सतही बदलाहट होती है, पर इससे कोई आत्मिक उत्थान या आध्यात्मिक उत्थान संभव नहीं हो पाता है, बल्कि कई अर्थों में तो इससे विपरीत ही

घटता है कि आत्मिक उत्थान की समस्त संभावनाएँ पूर्णतया नष्ट हो जाती हैं।

इसे ऐसे समझें कि हमारे द्वारा किसी घटना को घटने के लिए दो तत्त्वों की आवश्यकता है। एक तो उस गतिविधि के लिए नैसर्गिक तत्त्व हमारे शरीर में होने चाहिए तो दूसरा उन रासायनिक तत्त्वों से हमारी चेतना को जोड़ने के लिए एक तादात्म्य का भाव हमारे भीतर चाहिए। जैसे हिंसा करने के लिए हमारे भीतर संबंधित हॉर्मोन्स की आवश्यकता है तो साथ ही हिंसा का भाव उत्पन्न करने के लिए घटना विशेष के साथ तादात्म्य के कारण उपजे क्रोध की भी आवश्यकता है।

काम-वासना के लिए यदि निश्चित रासायनिक हॉर्मोन्स की जरूरत है तो वो भाव मन में उभरने के लिए उपजी वासना की भी आवश्यकता है। इनमें से शारीरिक या रासायनिक तत्त्वों को नष्ट कर देने से आंतरिक तादात्म्य का अंत नहीं होता, जैसे आँख फोड़ देने से मन में कुविचार आने बंद नहीं हो जाते। जैसे शरीर से काम-वासना की ग्रंथि काट देने से नपुंसकता आ जाती है, पर उससे ब्रह्मचर्य नहीं पैदा हो जाता।

ब्रह्मचर्य का भाव या वो आंतरिक स्थिरता का भाव—साक्षीभाव से आता है और साक्षीभाव आंतरिक तादात्म्य के समाप्त हो जाने से उपजता है। वह आंतरिक तादात्म्य राग व द्वेष के कारण पनपता है।

जैसे ही व्यक्ति राग-द्वेष से मुक्त होकर, निर्विकार होकर, साक्षीभाव से कर्म करता है तो उसके व्यक्तित्व के भीतर एक जागरूकता, निर्मलता का भाव महसूस किया जा सकता है और इस भाव को ही 'प्रकाश' कहकर पुकारते हैं। वे कहते हैं कि राग-द्वेष से मुक्त पुरुष के शरीर, इंद्रिय एवं अंत:करण में एक विशिष्ट निर्मलता, प्रकाशरूप में आते हैं।

सतोगुण के प्रभाव से उपजी इस प्रकाशवृत्ति का यदि उसमें स्वत: ही प्रादुर्भाव हो जाता है तो भी उसके ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और जब यह प्रकाशवृत्ति तिरोहित हो जाती है तो भी वह उसके आगमन की प्रतीक्षा नहीं करता। दूसरे शब्दों में उसके प्रादुर्भाव या तिरोभाव—दोनों के समय उसकी स्थिति अपरिवर्तित रहती है।

इसी प्रकार काम, लोभ, स्पृहा एवं आसक्ति जो रजोगुण की प्रवृत्ति से होने वाले कार्य हैं, वे भी गुणातीत पुरुष में नहीं होते। किसी भी स्फुरणा और क्रिया के प्रादुर्भाव और तिरोभाव में उसकी स्थिति सदा एक-सी बनी रहती है। इसी क्रम में तमोगुण की प्रचुरता के कारण होने वाला मोहभाव भी उसमें नहीं होता है।

गुणों से पार गया मनुष्य, सतोगुण के कार्यरूप प्रकाश को, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को प्रवृत्त होने पर न तो उन्हें बुरा समझता है और न उनकी निवृत्ति पर उनकी आकांक्षा करता है। यह निस्पृहता ही गुणातीत पुरुष की पहचान कही जा सकती है। ❑

विषमविषयमार्गैर्गच्छतोऽनच्छबुद्धेः
प्रतिपदमभियातो मृत्युरप्येष विद्धि।
हितसुजनगुरूक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या
प्रभवति फलसिद्धिः सत्यमित्येव विद्धि॥

—विवेक चूड़ामणि, 83

अर्थात विषयरूपी विषम मार्ग में चलने वाले मलिनबुद्धि को पद-पद पर मृत्यु आती है—ऐसा जानो और यह भी बिलकुल ठीक समझो कि हितैषी, सज्जन अथवा गुरु के कथनानुसार अपनी युक्ति से चलने वाले को फल-सिद्धि हो ही जाती है।

फसल-उत्पादन में जैव-उर्वरकों की भूमिका



कृषि उत्पादन को बढ़ाना कृषि वैज्ञानिकों के सामने प्रमुख चुनौती है। सघन खेती से मृदा में पोषक तत्त्वों का स्तर धीरे-धीरे गिर रहा है। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से इस कमी को पूरा किया जाता है। अधिकांश किसान संतृप्त मात्रा में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग के बावजूद अधिकतम उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं। अत: रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से होने वाला लाभ घट रहा है और मृदा पर भी विपरीत प्रभाव दिखाई पड़ रहा है।

फसलों द्वारा भूमि से लिए जाने वाले मुख्य प्राथमिक पोषक तत्त्व—नाइट्रोजन, फॉस्फेट एवं पोटाश हैं। इनमें से नाइट्रोजन का सर्वाधिक अवशोषण होता है; क्योंकि इस तत्त्व की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। पोषक तत्त्वों का शेष 50-60 प्रतिशत भाग का वायुमंडल में डिनाइट्रीफिकेशन या जमीन में ही अस्थायी बंधक के रूप में नुकसान होता है।

वर्तमान परिस्थितियों में नाइट्रोजन उर्वरकों के साथ-साथ नाइट्रोजन के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि मृदा की उर्वरा शक्ति को स्थायी बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में जैव-उर्वरकों का प्रयोग करना ही एकमात्र विकल्प है।

जैव-उर्वरक एक विशिष्ट प्रकार के जीवाणुओं का एक विशेष प्रकार के माध्यम; यथा चारकोल, मिट्टी या कंपोस्ट खाद में ऐसा मिश्रण है, जो मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करके पौधों को उपलब्ध कराता है व इसके साथ ही वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भी चक्रीय विधि द्वारा पौधों को उपलब्ध कराता है। इसके प्रयोग से रासायनिक उर्वरकों की एक-तिहाई मात्रा तक की बचत होती है। नाइट्रोजन पूर्ति करने वाले जैव-उर्वरक जीवाणु सभी दलहनी फसलों व तिलहनी जैसे—सोयाबीन और मूँगफली की जड़ों में छोटी-छोटी ग्रंथियों में पाए जाते हैं, जो सहजीवन के रूप में कार्य करते हुए वायुमंडल में उपलब्ध नाइट्रोजन पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

राइजोबियम जीवाणु फसलों के लिए अलग-अलग होता है, इसलिए बीज-उपचार हेतु उसी फसल का कल्चर प्रयोग करना चाहिए।

जैव-उर्वरकों से बीज-उपचार करने की विधि जैव-उर्वरकों के प्रयोग की सर्वोत्तम विधि है। एक लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ मिलाकर अच्छी तरह उबालकर घोल बनाते हैं।

इस घोल को बीजों पर अच्छी तरह छिड़ककर मिला देते हैं, जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी अच्छी हलकी परत चढ़ जाए। इसके पश्चात बीजों को छायादार स्थान पर सुखाते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरंत बाद कर लेनी चाहिए। धान एवं सब्जी वाली फसलों की जड़ों को भी जैव-उर्वरकों द्वारा उपचारित किया जाता है।

इसके लिए बरतन में 5-7 लीटर पानी में एक किलोग्राम जैव-उर्वरक मिला लेते हैं, जिसके उपरांत नर्सरी से पौधों को उखाड़कर एवं जड़ों से मिट्टी साफ करने के पश्चात 50-100 पौधों को बंडल में बाँधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबा देते हैं और इसके बाद तुरंत रोपाई कर देते हैं।

कंद उपचार-विधि—एक किलोग्राम जैव-उर्वरकों को 20-30 लीटर पानी में घोलकर मिला देते हैं। इसके उपरांत कंदों को 10 मिनट तक घोल में डुबाकर रखने के पश्चात बुवाई कर देते हैं। आलू, अदरक जैसी फसलों में जैव-उर्वरकों के प्रयोग हेतु कंदों को उपचारित किया जाता है।

मृदा उपचार-विधि—मृदा उपचार के लिए 50-60 किलोग्राम मिट्टी या कंपोस्ट में 4-6 किलोग्राम जैव-उर्वरक मिलाकर मिश्रण तैयार करके प्रतिहैक्टेयर की दर से खेत की अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देते हैं।

जैव-उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए। जैव-उर्वरक को हमेशा धूप या गरमी से बचाकर रखना चाहिए।

यह एक सहजीवी जीवाणु है, जो पौधों की जड़ों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके उसे पौधों के लिए उपलब्ध कराती है। यह खाद दलहनी फसलों में प्रयोग की जा सकती है एवं यह फसल विशिष्ट होती है अर्थात अलग-अलग फसल के लिए अलग-अलग प्रकार का राइजोबियम जीवाणु खाद का प्रयोग होता है।

राइजोबियम जीवाणु खाद से बीज उपचार करने पर ये जीवाणु खाद से बीज पर चिपक जाते हैं। बीज अंकुरण पर ये जीवाणु जड़ के मूलरोम द्वारा पौधों की जड़ों में प्रवेश कर जड़ों पर ग्रंथियों का निर्माण करते हैं। फसल विशिष्ट पर प्रयोग की जाने वाली राइजोबियम कल्चर इस प्रकार है—

एजोटोबैक्टर कल्चर—यह जीवाणु खाद में पौधों के जड़-क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से रहने वाले जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यह जीवाणु खाद दलहनी फसलों को छोड़कर सभी फसलों पर उपयोग में लाई जा सकती है। इसका प्रयोग सब्जियों जैसे—टमाटर, बैंगन, मिर्च, गोभीवर्गीय सब्जियों में किया जाता है।

एजोस्पाइरिलम कल्चर—यह जीवाणु खाद भी मृदा में पौधों की जड़ में स्वतंत्र रूप से रहने वाले जीवाणुओं का एक नम चूर्ण रूप उत्पाद है, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। यह जीवाणु खाद धान, गन्ना, मिर्च, प्याज आदि फसल हेतु विशेष उपयोगी है।

नील हरित शैवाल खाद—एककोशिकीय सूक्ष्म नील हरित शैवाल नम मिट्टी एवं स्थिर पानी में स्वतंत्र रूप से रहते हैं। धान के खेत का वातावरण नील हरित शैवाल के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है। इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक ताप, प्रकाश, नमी और पोषक तत्त्वों की मात्रा धान के खेत में विद्यमान रहती है। धान की रोपाई के 3-4 दिन बाद स्थिर पानी में 12.5 किलोग्राम प्रतिहैक्टेयर की दर से सूखे जैव-उर्वरक का प्रयोग करें। इसे प्रयोग करने के पश्चात 4-5 दिन तक खेत में लगातार पानी भरा रहने दें। इसका प्रयोग कम-से-कम तीन वर्ष तक लगातार खेत में करें। इसके बाद इसे पुनः डालने की आवश्यकता नहीं होती। यदि धान में किसी खरपतवारनाशक का प्रयोग किया है तो इसका प्रयोग उसके प्रयोग के 3-4 दिन बाद ही करें।

एजोला—यह एक जलीय फर्न है, जो कि जल स्रोतों पर फैली रहती है। एन्थोसाइनीन हरित कवक के कारण इसका रंग गहरा नीला हरा रहता है। यह 25-30 किलोग्राम प्रतिहैक्टेयर, वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। एजोला की मुख्य स्पीशिज एजोला केरोलियम, एजोला निलोटिका, एजोला माइक्रोफाइला एवं पिनाटा है। भारत में एजोला पिनाटा मुख्य स्पीशिज है।

फॉस्फेटिक कल्चर (फॉस्फोरस घुलनशील जीवाणु)—फॉस्फेटिक जीवाणु खाद भी स्वतंत्रजीवी जीवाणुओं का एक आर्द्र चूर्ण रूप उत्पाद है। नाइट्रोजन के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण पोषक तत्त्व फॉस्फोरस है, जिसे पौधे सर्वाधिक उपयोग में लाते हैं। फॉस्फेटिक उर्वरकों का लगभग एक-तिहाई भाग पौधे अपने उपयोग में ला पाते हैं; शेष घुलनशील अवस्था में जमीन में ही पड़ा रह जाता है, जिसे पौधे स्वयं जीवाणुओं द्वारा घुलनशील अवस्था में बदल देते हैं एवं इसका प्रयोग सभी फसलों में किया जा सकता है।

फॉस्फेटिक कल्चर या पी-एच.बी. कल्चर का प्रयोग पौधरोपाई लगाने के पूर्व धान की जड़ों या बीज को बोने के पहले उपचारित किया जाता है। बीज उपचार हेतु 5-10 ग्राम कल्चर प्रतिकिलोग्राम बीज दर से उपचारित करें। रोपाई पद्धति में धान की जड़ों को धोने के बाद 300-400 ग्राम कल्चर के घोल में डुबाकर निथार लें व बाद में रोपाई करें। पी-एच.बी. कल्चर का भूमि में सीधे उपयोग की अपेक्षा बीजोपचार या जड़ों का उपचार अधिक लाभकारी होता है।

माइकोराइजा (वैस्कुलर ऑरबोस्कुलर माइकोराइजा)—यह उच्च पौधों की जड़ों एवं कवक के मध्य सहजीवी संबंध है, जो कि फॉस्फोरस के अवशोषण में मुख्य भूमिका निभाता है। माइकोराइजा मृदा की उर्वराशक्ति में सुधार कर पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है। इसके प्रयोग से फसलों की पैदावार में वृद्धि होती है। यह मृदा को रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभाव से बचाता है। ये हानिकारक या विषैले नहीं होते। मृदा को लगभग 25-30 कि.ग्रा. प्रतिहैक्टेयर, नाइट्रोजन एवं 15-20 कि.ग्रा. प्रतिहैक्टेयर फॉस्फोरस उपलब्ध कराना तथा मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशाओं में सुधार लाना इनका उद्देश्य है। इस प्रकार मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और उत्पादन में वृद्धि होती है। ❑

चेतना की शिखर यात्रा – 237

जल–उपवास : प्रक्षालन प्रयोग



विगत अंक में आपने पढ़ा कि साधना से संबंधित संरक्षण दोष-परिमार्जन की प्रक्रिया को स्वयं पूज्य गुरुदेव ने 24 दिनों के अपने कठिन जल-उपवास के माध्यम से संपन्न किया। उनकी इस कठोर तपश्चर्या ने अनेक गायत्री परिजनों को उनके स्वास्थ्य में हो रहे बदलावों से बहुत चिंतित किया। अतः वे सभी पूज्यवर की तपश्चर्या के संपन्न होने तक शांतिकुंज में ही रहे। पूज्य गुरुदेव के कृत्यों में निहित उद्देश्यों का ठीक-ठीक अनुमान लगा पाना परिजनों के लिए प्रायः असंभव ही था और इसी कारण वे सभी अपनी समझ के आधार पर अनुमान लगा रहे थे। पूज्य गुरुदेव द्वारा कुछ दिनों के पश्चात आत्मीय जनों की जिज्ञासा के समाधान हेतु एक अवसर पर अपना संदेश देते हुए बताया कि वे साधना विज्ञान के सामयिक शोध में लगे हुए हैं और जिसके द्वारा वे युग निर्माण के परिवर्तन में काम आने वाली साधना-पद्धति गायत्रीसाधकों को प्रदान करेंगे। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

चेन्ना रेड्डी को प्रेरणा

दरअसल चेन्ना रेड्डी आंध्र प्रदेश के खांटी राजनेता थे। वे दो बार वहाँ के मुख्यमंत्री रहे। राजनीतिक जीवन के उतार-चढ़ावों से गुजरते हुए 1974 में वे उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बने। आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री रहते हुए चेन्ना रेड्डी ने वहाँ की धार्मिक संस्थाओं और मंदिरों की व्यवस्था में सुधार के लिए कई कदम उठाए थे। धर्म संस्थानों ने शुरू में इन प्रयासों का जबरदस्त विरोध किया। कुछ ने उन सुधारों को लागू भी किया, पर ज्यादातर उनके विरुद्ध ही थे। चेन्ना रेड्डी उन दिनों आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री—चुने हुए जनप्रतिनिधि थे। इसलिए कितना ही सही कदम हो, वे जनमत के खिलाफ नहीं जा सकते थे। फिर बाद में अन्य कारणों से उन्हें मुख्यमंत्री पद से हटना पड़ा और वे सुधार प्रयास पूरी तरह लागू नहीं हो सके।

1974 में उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बनने के कुछ ही समय बाद उन्होंने उच्च प्रशासनिक अधिकारियों का एक दल धर्म संस्थानों में किए सुधारों का अध्ययन करने के लिए आंध्र प्रदेश भेजा। चेन्ना रेड्डी ने शैक्षणिक और प्रशासनिक सुधारों के प्रयास भी किए थे, लेकिन धार्मिक सुधारों के लिए उन्हें ज्यादा जाना जाता है। आंध्र प्रदेश भेजी गई अधिकारियों की टीम ने लौटकर रिपोर्ट दी और उत्तर प्रदेश में धर्म संस्थानों के सुधार के लिए भी जरूरी उपायों की सिफारिश की। उन सिफारिशों को राज्य के मंत्रिमंडल ने स्वीकृत कर लिया। साथ ही उच्च अधिकारियों की एक और टीम नियुक्त कर दी और उसे अपने अध्ययन का दायरा तमिलनाडु, केरल तथा कर्नाटक राज्यों तक बढ़ाने का निर्देश दिया। इस तरह अध्ययन दल को एक बड़े क्षेत्र और ज्यादा समय तक अध्ययन करने का मौका मिल गया।

मंत्रिमंडल के इस फैसले का अर्थ लगाया गया कि राज्य सरकार धर्म संस्थानों को नाराज नहीं करना चाहती। इसलिए वह समय खींच रही थी। लेकिन दिसंबर, 1975 में उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। कुछ ही सप्ताह बाद राज्यपाल ने एक अध्यादेश जारी कर दिया और सभी धार्मिक संस्थाओं, मंदिरों, देवालयों की व्यवस्था और उनकी संपत्ति के उपयोग को विनियमित करने के लिए एक वैधानिक निकाय बना दिया। यह व्यवस्था हिंदू संस्थाओं के लिए ही की गई थी। सरकारी मान्यता के अनुसार जैन और बौद्ध संस्थाएँ भी हिंदू की परिभाषा में ही आती थीं। इस अध्यादेश ने धार्मिक संस्थाओं, आश्रमों और मंदिरों के प्रबंधन को झकझोर कर रख दिया। उन्होंने न्यायालय की शरण लेनी चाही। कुछ ने याचिकाएँ भी दायर कीं। कई ने केंद्र सरकार से दखल की अपील की।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

केंद्र ने इसे राज्य का मामला बताते हुए दखल देने से इनकार कर दिया। जब सभी धर्म संस्थाएँ आंदोलन करने, कोर्ट में जाने और विरोध जताने की रणनीति बना रही थीं तो गायत्री परिवार ने अपने सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों, गतिविधियों का एक प्रतिवेदन राज्य सरकार के पास भेजा। उस प्रतिवेदन में दिए गए लक्ष्यों के मुताबिक किसी सरकारी अधिकारी को संस्था का प्रशासक नियुक्त किया जाता तो गायत्री परिवार की लोकसेवी गतिविधियों पर बुरा प्रभाव पड़ता।

शांतिकुंज और गायत्री तपोभूमि के कार्यकर्त्ता भी इस अध्यादेश से चिंतित दिखाई दिए थे। गुरुदेव के सामने उन्होंने अपनी आशंकाएँ रखीं तो निश्चिंत रहने का संकेत मिला। गुरुदेव ने कहा था कि भगवान का काम करने में जुटे हैं। हममें से हर किसी को विश्वास रखना चाहिए कि उनके काम को वही चलाएँगे। अगर कोई बाधा आती है तो उसे भी वही दूर करेंगे। और माना कि भगवान हमारी परीक्षा लेना ही चाहता है तो हम लोग कुटिया में रहकर भी उनका काम करेंगे।

हरिद्वार की धार्मिक संस्थाओं और आश्रमों ने उस अध्यादेश के खिलाफ आंदोलन छेड़ने की योजना बनाई। इसके लिए संतमंडल के लोगों ने गुरुदेव से संपर्क किया। गुरुदेव ने उन्हें भी उत्तर दिया था कि हम भगवान का काम करने में जुटे हैं। वे जैसे कराएँ, करेंगे। किसी सरकारी हस्तक्षेप को निश्चित ही नहीं मानेंगे, लेकिन हमारे नियंता ने अभी इसके विरुद्ध उठ खड़े होने के लिए नहीं कहा है। आंदोलन में भागीदार बनाने के लिए आए संत वापस चले गए। उनमें से कुछ तो यह सोचकर चुप बैठ गए कि गायत्री परिवार जैसी विराट संस्था निश्चिंत निर्भय है तो हमें ही क्यों परेशान होना चाहिए।

धर्म संस्थानों द्वारा विरोध के लिए बनाई जा रही योजनाएँ जहाँ-की-तहाँ धरी रह गईं। न केवल विरोध धरा रह गया, बल्कि उस अध्यादेश पर भी अमल नहीं हुआ। रोक कहाँ से लगी, कुछ पता नहीं चला। राष्ट्रपति शासन समाप्त होने के बाद राज्य में नई सरकार बनी तो इस विषय में तरह-तरह के मत सामने आए। इनमें सबसे ज्यादा प्रचलित कारण यह बताया जा रहा था कि राज्य का प्रशासनिक तंत्र चलाने वाले अधिकारी धर्मभीरु थे और उन्होंने अध्यादेश के बारे में कोई दिलचस्पी नहीं ली। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन सचिव राजेश माथुर ने बताया कि अध्यादेश के बारे में सुनकर विभागीय अधिकारी हँसे थे। श्री माथुर बाद में राज्य सरकार के सार्वजनिक निर्माण विभाग में आ गए थे और वहाँ से निवृत्त होने के बाद सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगे थे। उन्होंने कहा कि अध्यादेश की खबर सुनकर कुछ अधिकारी तो सन्न रह गए। उन्हें बदरीनाथ, केदारनाथ, काशी-विश्वनाथ आदि प्रसिद्ध मंदिरों की व्यवस्था का अध्ययन करने में लगाया गया था। यह दायित्व सौंपे जाते समय उपहास के बाद चिंता का भाव भी आया। उपहास इसलिए कि धर्मनिरपेक्षता का दावा करने वाली सरकार और उसका प्रशासन तंत्र अब मंदिरों और देवस्थानों के बारे में सोचने लगा है। ही ही ही कर हँसते हुए माथुर के सहयोगी राम नारायण शुक्ला ने कहा कि गैर हिंदू धर्म संस्थानों के बारे में भी सरकार सोचे न जरा। वह तो हम लोग ही हैं। इतनी बात कहते-कहते वे रुके और बोले कुछ भी हो भाइयो हमें यह मंशा पूरी नहीं होने देनी है।

अध्यादेश में भारतीय धर्म के दायरे में आने वाले तमाम संस्थानों को छुआ गया था। जैन स्थानकों ने सवाल उठाया कि उनके मंदिरों में काम-काज करने वालों के लिए जैन मर्यादाओं का पालन करना अनिवार्य है। जैन मंदिरों में पुजारी, पुरोहितों का काम ब्राह्मण समाज के लोग करते हैं। उनके शील-सदाचार भले ही कुछ अलग हों, लेकिन मंदिर से जुड़े रहने तक उन्हें भी रात्रि भोजन का त्याग, अनायास मिल गए भोजन और निर्वाह- साधनों का उपयोग, अपना काम स्वयं करने, जमीन पर सोने और खुले पाँव चलने जैसी जैन मुनियों की मर्यादाओं का पालन करना होता है। इन विधि-नियमों का हवाला देते हुए राजभवन के ही एक जैन अधिकारी प्रमोद कुमार ने माननीय राज्यपाल महोदय से सवाल कर दिया कि अध्यादेश लागू हो गया तो सरकार के संबंधित अधिकारी इन मर्यादाओं का पालन करेंगे क्या? इन मर्यादाओं में चूक हुई तो मंदिर और देवस्थान की गरिमा विक्षत होती है। प्रमोद कुमार ने जैन-इतर समुदाय के अधिकारियों से भी इसी तरह का विमर्श किया था।

एक सूचना यह भी थी कि वाराणसी, इलाहाबाद, मथुरा, अयोध्या और सारनाथ आदि तीर्थों के छोटे-बड़े अधिकारियों ने दबे, छिपे रोष जताया था। इस बात में

काफी दम था कि अध्यादेश के बारे में तत्कालीन प्रशासन ने खास दिलचस्पी नहीं ली थी। लेकिन राज्यपाल चेन्ना रेड्डी का मन था कि धर्म संस्थाओं की व्यवस्था में हर हाल में सुधार आना चाहिए।

कहते हैं कि गायत्री परिवार के किन्हीं कार्यकर्त्ता ने उन्हें गुरुदेव की एक लिखी पुस्तिका (ट्रेक्ट) 'मंदिर जनजागरण के केंद्र बनें' भेंट की थी। पुस्तक का शीर्षक देखकर ही उन्होंने परिवार के कार्यकर्त्ता से ट्रैक्ट के प्रतिपाद्य विषय के बारे में पूछा। उन कार्यकर्त्ता के मुताबिक चेन्ना रेड्डी को विषयवस्तु और गायत्री परिवार के बारे में बताया भी था। पता नहीं 1975 के अध्यादेश में इस ट्रैक्ट और मिशन के परिचय की कितनी नैमित्तिक पृष्ठभूमि थी। लेकिन यह सही है कि मंदिरों, देवस्थानों के प्रभाव और वैभव को जनहित में लगाने की राज्यपाल की मंशा सूक्ष्म दैवी प्रेरणाओं के कारण भी बनी थी।

फरवरी, 1977 में शांतिकुंज आने पर उन्होंने खुद भी इस बारे में उत्सुकता जताई थी। उनका कहना था कि मंदिरों को मिलने वाली श्रद्धा और लोगों की उदारता, भावना और सेवा शक्ति का उपयोग जनकल्याण में लगने का तंत्र अपने आप विकसित हो सके तो सरकार को दखल देने की जरूरत ही क्यों पड़े? गायत्री परिवार के संबंध में एक मुट्ठी अनाज, या दस पैसा प्रतिदिन अथवा महीने में एक दिन की आय के अलावा एक घंटा प्रतिदिन देने के व्रत ने चेन्ना रेड्डी को अभिभूत किया था। हजारों-लाखों लोगों के सहयोग या अंशदान से गायत्री परिवार की गतिविधियाँ सुचारु चलती रही हैं। राज्यपाल ने इन सबके बारे में पता चलने पर कहा था कि मिशन की कार्यप्रणाली की यह जानकारी रही होती तो वे अधिकारियों की टीम दक्षिण भारत में भेजने के बजाय यहाँ शांतिकुंज भेजते।

(क्रमशः)

पंढरपुर में कार्तिक-यात्रा का मेला लगा हुआ था। विभिन्न इलाकों से वहाँ कई साधु-संत आए थे। एकादशी के निर्जला उपवास के बाद पारण के लिए सभी अधीर थे। कोई आटा सानता, कोई रोटी बनाता तो कोई भगवान को भोग लगाता था। इसी बीच एक श्वान वहाँ आ पहुँचा। पहले दिन कुछ भी न मिलने से वह काफी भूखा था। इसलिए वह कभी आटे को सूँघता तो कभी किसी की पकी रोटी छूता और कभी तो वह किसी की परोसी थाली में ही मुँह डालने की कोशिश करता। वहाँ उपस्थित साधु उसे दुत्कारते, मारते, भगाते थे। सबको अपनी ही भूख की पड़ी थी। चारों ओर से तिरस्कृत हो वह संत नामदेव के पास आया और उनकी सेंकी रोटी लेकर भागा। यह देखकर संत नामदेव पास में रखी घी की कटोरी लेकर उसके पीछे-पीछे यह कहते हुए दौड़े—"भई! रूखी रोटी मत खाओ, पेट में दरद होगा। इस रोटी में घी चुपड़ देता हूँ, फिर खाना।" आखिरकार नामदेव ने उसको पकड़ ही लिया और रोटी में घी लगाकर उसे खिलाने लगे। यह दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी साधुजन हँसने लगे। वे आपसी बातचीत में संत नामदेव का उपहास उड़ाने लगे, किंतु नामदेव ने उनकी बिलकुल परवाह नहीं की। पेट भर जाने के बाद उस श्वान ने मनुष्य की वाणी में संत नामदेव से कहा—"नामदेव! तुम्हारी सभी प्राणियों में समान दृष्टि है। तुमने सर्वत्र समदृष्टि रखने की सिद्धि प्राप्त कर ली है।" यह कहकर श्वानस्वरूप भगवान अंतर्धान हो गए।

संगीत है सर्वोत्तम औषधि



विगत समय में किए गए अनुसंधानों से यह बात सिद्ध हो गई है कि संगीत न केवल मन को शांत करता है, बल्कि यह कई रोगों को दूर करने में भी कारगर है। यही वजह है कि गुणी व श्रेष्ठ चिकित्सक उपचार के दौरान संगीत को भी चिकित्सा-पद्धति का हिस्सा मानते हैं, जिसे राग चिकित्सा कहना श्रेयस्कर होगा।

पटना स्थित बाल चिकित्सा केंद्र के हर वार्ड में बच्चों को प्रिय लगने वाला सुमधुर संगीत सुनना सुखद लगा। गंभीर अवस्था में भी बच्चे खुश थे और कुछ किलकारी भर रहे थे। लय और सुर पर आधारित संगीत हमारे मस्तिष्क की तरंगों और शरीर के चक्र को प्रभावित करता है। हमारे शरीर में असीमित ऊर्जा सुप्त अवस्था में रहती है। सकारात्मक रूप से उसे जगाने में संगीत अहम भूमिका निभाता है। अत: संगीत को सिर्फ मनोरंजन का हिस्सा नहीं मानना चाहिए।

अब डॉक्टरों की भी यह राय बन रही है कि संगीत चिकित्सा से न केवल मानसिक, बल्कि शरीर की कुछ व्याधियों का उपचार भी संभव है। राग रिसर्च सेंटर, चेन्नई ने राग आधारित संगीत से उपचार की संभावनाओं पर अध्ययन कर यह पाया है कि रक्तचाप, सिजोफ्रेनिया और एपिलेप्सी तक का उपचार इससे किया जा सकता है। संगीत से मन खुश होता है तो निश्चित तौर से उपचार के दौरान दवाओं का अच्छा असर होगा। बिस्तरों पर पड़े मरीज सुमधुर संगीत सुनकर उठ बैठते हैं। उनमें एक नए उत्साह का संचार होने लगता है।

चिकित्सकों के मुताबिक बढ़ती उम्र की बीमारियों, मस्तिष्क में चोट और अलजाइमर जैसे रोग तक के उपचार में संगीत विशेष भूमिका निभाता है। हालाँकि हर मरीज पर इसका एक जैसा प्रभाव हो, यह संभव नहीं। यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि संगीत का उस पर कितना और कब तक प्रभाव रहा। संगीत हमारी तंत्रिकाओं को शांत करने के साथ मन को भी एकाग्र करता है। यह जीवन की समस्याओं से पैदा हुए तनाव को कमजोर करता है।

रोगी को भारतीय संगीत को एक बार जरूर सुनना चाहिए। यह राग चिकित्सा ही है, जिसके महत्त्व को आधुनिक चिकित्सकों ने भी समझ लिया है। प्राचीनकाल में इसे नादयोग कहा जाता था। ध्वनि का हमारे शरीर और मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। नादयोग को चिकित्सा के दौरान राजाओं-महाराजाओं के वैद्यों ने भी सैकड़ों साल पहले प्रयोग किया था।

इक्कीसवीं सदी में भी लोगों का इसी राग चिकित्सा पर विश्वास बढ़ा है। इसे हम पूरक चिकित्सा भी कह सकते हैं। कुछ चिकित्सक तो अस्थमा और तंत्रिका संबंधी रोग के उपचार में राग चिकित्सा का भी प्रयोग कर रहे हैं।

संगीत हमें भावनात्मक संबल देता है। राग और वाद्यों की ध्वनि हमारे शरीर में एक नई रसधारा घोलती है। यह एक तरह का रासायनिक परिवर्तन होता है, जिसमें शरीर खुद ही व्याधियों का उपचार करता है या दवाओं के साथ मिलकर रोग को खतम करता है।

प्राचीन भारतीय ग्रंथ स्वर शास्त्र के अनुसार हमारे यहाँ कोई 72 विशेष राग हैं, जो शरीर की 72 अत्यंत महत्त्वपूर्ण नाड़ियों को नियंत्रित करते हैं। अगर कोई इन रागों को बहुत ध्यान से और उच्चारण को पूरी स्पष्टता के साथ दिमाग में उतारता है तो इससे शरीर की खास तंत्रिकाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

कुछ रागों का तो भावनात्मक और शारीरिक स्तर पर ऐसा गंभीर असर होता है कि व्यक्ति कोमा से भी बाहर आ सकता है। यही कारण है कि बड़े अस्पतालों के तंत्रिका रोग विशेषज्ञ भी इसके महत्त्व से इनकार नहीं करते। संगीत से स्मृति खो चुके मरीजों का भी उपचार संभव है।

विशेषज्ञों के मुताबिक कुछ राग ध्वनि का ऐसा कंपन पैदा करते हैं, जिससे मांसपेशियों से लेकर तंत्रिकाओं और चक्र तक प्रभाव पड़ता है। नाड़ियों में संचार सामान्य होने लगता है। इससे मनुष्य तनावरहित महसूस तो करता ही है, कुछ बीमारियाँ भी दूर होती हैं।

अभी कुछ चिकित्सक रोगों की चिकित्सा के लिए जिन रागों का प्रयोग कर रहे हैं, उनमें राग चंद्रकौंस, पहाड़ी राग, राग मालकोस और राग भूपाली व राग तोड़ी हैं। पहाड़ी राग का श्वास संबंधी बीमारियों में इस्तेमाल होता है तो राग चंद्रकौंस का हृदय संबंधी समस्याओं में। रक्तचाप के उपचार में राग असवारी और मालकोस कारगर हैं। राग तोड़ी और भूपाली उच्च रक्तचाप को कम करता है। इसके बेहतर परिणाम देखकर स्वास्थ्य विशेषज्ञ राग चिकित्सा की खूबियों से हैरान हैं तो मरीज खुश।

उम्मीद की जा रही है कि नादयोग अर्थात राग चिकित्सा का दिनोंदिन महत्त्व बढ़ेगा और सभी डॉक्टर इसे चिकित्सा-पद्धति मानकर मरीजों के कुछ गंभीर रोगों के निदान में प्रयोग करेंगे।

संगीत सुनने से न केवल तनाव दूर होता है, बल्कि रोग से लड़ने की क्षमता बढ़ती है। वैदिक काल में संगीत से कई रोगों का उपचार किया जाता था।

संगीत के अंतर्गत ही नृत्य शारीरिक और संगीत मानसिक रोगों का उपचार करता था। आज ये चिकित्सा विधियाँ संगीत चिकित्सा और नृत्य चिकित्सा के नाम से प्रचलित हैं।

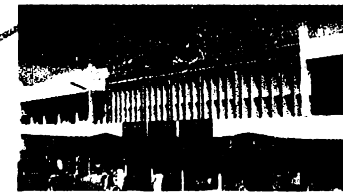
मोक्षायतन इंटरनेशनल योगाश्रम की नृत्य एवं योग चिकित्सक आचार्य प्रतिष्ठा कहती हैं कि आज ज्यादातर रोग मन की वजह से होते हैं। तीनों विधाओं—योग, नृत्य और संगीत का विषय तन न होकर मन है। मन पर पड़ने वाले प्रभाव का असर बाद में हमारे तन पर भी दिखने लगता है। ❑

नगरसेठ गोपाल्लव अथाह धनराशि का स्वामी था। विपुल धन-वैभव के होते हुए भी उसके मन में तनिक भी शांति न थी। कई रातें बीत जातीं, पर वह बिस्तर पर करवटें ही बदलता रहता और उसका मन उद्विग्न-बेचैन बना रहता। एक दिन वह अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था कि उसे एक मधुर आवाज सुनाई पड़ी, कोई व्यक्ति बाहर ईश्वर का भजन गा रहा था। उस संगीत को सुनकर गोपाल्लव का मन ऐसा शांत हुआ कि उसे तुरंत नींद आ गई।

अगले दिन उसने उस व्यक्ति को बुलवाया, जो भजन गा रहा था। वह व्यक्ति नगर का मोची था। उसने उसे एक स्वर्णमुद्रा दी, पर स्वर्णमुद्रा पाने के बाद उस व्यक्ति का भजन कई रातों तक नहीं सुनाई पड़ा। गोपाल्लव ने उसे बुलवाया तो पता चला कि उसने जीवन में पहली बार स्वर्णमुद्रा देखी थी और उसे पाने के बाद उसकी रक्षा में ऐसा निरत हुआ कि उसकी स्वयं की नींद चली गई। यह सुनकर गोपाल्लव को भान हुआ कि स्वार्थ ही सारी समस्याओं का मूल है। उसने अपनी धन-संपत्ति को परोपकार के कार्यों में उपयोग करने का निश्चय किया। परमार्थ का पथ अपनाते ही उसके मन में शांति ने स्थान बना लिया।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 158

अनिद्रा पर राग चिकित्सा का प्रभाव



नींद हमारे स्वास्थ्य और प्रसन्नता का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। अच्छी और संतुलित नींद शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में मुख्य भूमिका निभाती है, परंतु नींद यदि पर्याप्त न हो पाए तो स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। नींद में असंतुलन को अनिद्रा की समस्या कहा जाता है।

इस समस्या से ग्रस्त होने पर व्यक्ति को कोशिश करने पर भी नींद नहीं आती है और फलस्वरूप आवश्यकतानुसार विश्राम नहीं मिल पाने से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हो जाता है। नींद संबंधी यह समस्या लाखों लोगों में पाई जाती है।

वैसे तो सामान्य जीवन में प्राय: सभी लोग इसका सामना करते हैं, जैसे काम का दबाव, व्यक्तिगत या पारिवारिक कोई घटना, किसी कार्य विशेष की चिंता आदि स्थितियों में कुछ दिनों या हफ्तों के लिए अनिद्रा की समस्या हो जाती है, परंतु यह एक सामान्य बात है कि इस अनिद्रा की स्थिति को किसी उपचार की आवश्यकता भी नहीं होती।

परिस्थितियों के ठीक होने पर यह समस्या भी स्वत: ठीक हो जाती है, लेकिन जिन्हें एक महीने या उससे ज्यादा समय तक लगातार अनिद्रा की समस्या हो रही हो तो फिर इसे गंभीरता से लेने की आवश्यकता होती है।

ऐसी स्थिति को ठीक करने के लिए उपचार की आवश्यकता होती है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत अनिद्रा की समस्या के लिए सार्थक एवं समुचित समाधान प्राप्त करने के उद्देश्य से एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य विगत दिनों संपन्न कराया गया है।

सन् 2016 में संपन्न किए गए इस अध्ययन को शोधार्थी जानकी पटेल द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० यतेंद्र दत्त अमोली के निर्देशन व डॉ० शिवनारायण प्रसाद के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है।

इस शोध अध्ययन का विषय था—**'कंपरेटिव स्टडी ऑफ दि इफेक्ट ऑफ यौगिक प्रैक्टिस एंड राग पूरिया ऑन इन्सोम्निया'**—अर्थात अनिद्रा पर योगाभ्यास और राग पूरिया के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन। इस अध्ययन के प्रयोगात्मक कार्य के लिए शोधार्थी द्वारा भुज, गुजरात के मेन्टल हेल्थ हॉस्पिटल से अनिद्रा की समस्या से ग्रस्त 90 लोगों का चयन किया गया, जिनकी उम्र 25 से 50 वर्ष के बीच थी।

इन चयनितों में महिला एवं पुरुष वर्ग को समान रूप से तीन वर्गों में रखा गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। इस परीक्षण में जो उपकरण प्रयुक्त किया गया वह है—चार्ल्स एम० मोरिन द्वारा निर्मित इन्सोम्निया सिवयरिटी इन्डेक्स (2011)।

परीक्षण के उपरांत नियमित 40 दिनों तक शोधार्थी द्वारा योगाभ्यास एवं राग पूरिया का अभ्यास कराया गया। प्रतिदिन के इस अभ्यास की अवधि 20 मिनट रखी गई। कुल चयनितों में से प्रयोगात्मक प्रक्रिया के लिए 60 लोगों को ही रखा गया था। इनमें से तीस लोगों को योगाभ्यास व अन्य तीस को राग पूरिया का अभ्यास कराया गया।

योगाभ्यास में 10 मिनट सूर्यनमस्कार, 5 मिनट उज्जायी प्राणायाम एवं 5 मिनट भ्रामरी प्राणायाम कराया गया। इसी तरह दूसरे समूह को 20 मिनट तक राग पूरिया सुनाया गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर प्रारंभ की ही भाँति शोध उपकरण द्वारा पुन: सभी चयनितों का परीक्षण किया गया।

दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि योगाभ्यास एवं राग पूरिया के संगीत का अनिद्रा के मरीजों पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही चयनित लोगों में से जिस समूह को योगाभ्यास अथवा राग पूरिया से स्वतंत्र रखा गया, उनमें अनिद्रा समस्या स्तर में कोई खास अंतर नहीं पाया गया।

अत: शोध परिणाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शोध में प्रयुक्त यौगिक तकनीकों एवं राग

पूरिया संगीत का अनिद्रा रोग निवारण में महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इन विधियों के नियमित अभ्यास द्वारा व्यक्ति धीरे-धीरे अनिद्रा रोग से मुक्त हो सकता है। इन तकनीकों का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि एलोपैथी की दवाइयों के समान इनका अन्य कोई दुष्परिणाम भी नहीं है, बल्कि ये उपचार-विधियाँ ऐसी हैं, जिनका संपूर्ण व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अध्ययन में प्रयुक्त दोनों उपचार की तकनीकें अपने आप में विशिष्ट और स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यंत लाभकारी हैं। योग स्वयमेव एक समग्र विज्ञान है। इसका उद्देश्य संपूर्ण स्वास्थ्य है—शारीरिक, मानसिक और आत्मिक। वेद, उपनिषद्, गीता आदि भारतीय शास्त्रों में इसके लाभों का विस्तृत विवरण है। इसका महत्त्व सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। ऐसे में रोगोपचार के लिए योग को एक समर्थ विकल्प के रूप में देखना सर्वथा उचित है।

इस शोध अध्ययन के उद्देश्यों में भी यही दृष्टिकोण निहित है। शोध में प्रयुक्त दूसरी तकनीक राग पूरिया है। संगीत का मानव चेतना से गहरा संबंध है। रागों का अपना विज्ञान है, जिसे समय-समय पर विद्वानों से इनकी महत्ता के साथ प्रतिपादित भी किया है। संगीत में प्रयुक्त विविध रागों का सीधा असर मनुष्य की मानसिक एवं भावनात्मक चेतना पर होता है। अतः शोधार्थी ने अपने अध्ययन में इस शिक्षा के उपचारात्मक पहलू के महत्त्व को सामने लाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इससे इस अध्ययन की मौलिकता और नूतनता और अधिक बढ़ गई है।

उक्त दोनों विशिष्ट भारतीय विधाओं के महत्त्व के कारण ही इस शोधकार्य के परिणाम में सार्थकता एवं सकारात्मकता प्राप्त हुई है। अध्ययन प्रयोग के लिए सम्मिलित किए गए योगाभ्यास तकनीकों का अपना अलग ही महत्त्व व प्रभाव है। जैसे सूर्यनमस्कार की विधि में आसन, प्राणायाम, मंत्र और ध्यान की प्रक्रियाएँ एक साथ सम्मिलित हैं, जिनके नियमित अभ्यास से संपूर्ण स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और व्यक्तित्व के हर स्तर पर संतुलन एवं आरोग्य स्थापित होता जाता है।

अनिद्रा जैसी समस्या के कई कारण हो सकते हैं, फिर भी यह योग की ऐसी सर्वसुलभ और सहज विधि है, जिसका प्रभाव सभी स्तर के अनिद्रा के रोगियों पर समान रूप से पड़ता है। दूसरी यौगिक तकनीक उज्जायी प्राणायाम की है। यह प्राण संचार के नियमन द्वारा मनःस्थिति को शांत और संतुलित बनाने में अत्यंत प्रभावकारी विधि है। अनिद्रा का एक बड़ा कारण आहार-विहार का असंयम होता है, ऐसे में यह प्राणायाम असंयम से उत्पन्न समस्याओं को नियंत्रित करने व शारीरिक-मानसिक कार्य-प्रणाली में सुव्यवस्था उत्पन्न करने में सहायक होती है। फलस्वरूप अनिद्रा जैसी समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

यौगिक अभ्यास की तीसरी तकनीक भ्रामरी प्राणायाम है। इस विशिष्ट प्राणायाम का प्रभाव हृदय एवं मस्तिष्क तंत्र पर विशेष रूप से देखा जाता है। अनिद्रा की स्थिति में मस्तिष्क एवं हृदय तंत्र की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्राणायाम से इनकी सहजता प्राप्त करने पर अनिद्रा की समस्या का समाधान सहज हो जाता है। योगाभ्यास तकनीकों के जैसे ही राग पूरिया भी ऐसी तकनीक है, जो मनोभावों को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित कर शांति, उल्लास, प्रसन्नता, स्थिरता जैसी क्षमताओं को विकसित करती है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग पूरिया का महत्त्व मन की शांति, स्थिरता और संतुलन से है। अतः इसका अभ्यास अनिद्रा की स्थिति से निबटने के लिए अत्यंत कारगर उपाय कहा जा सकता है। इस राग को राग-बहार व यवनिक राग के नाम से भी जाना जाता है। यह गंभीर प्रकृति का राग है। उपचार की दृष्टि से इसका अभ्यास मन को एक तरह से गहन ध्यान की अवस्था में ले जाकर शांत एवं सुखद अनुभूति प्राप्त कराता है।

अनिद्रा के उपचार की दृष्टि से दोनों विधाएँ तुलनात्मक रूप से समान प्रभावकारी एवं उपयोगी हैं। आधुनिक चिकित्सा के दुष्प्रभावों एवं अधूरे समाधान की तुलना में अनिद्रा जैसी गंभीर समस्या के समाधान हेतु इन प्राचीन भारतीय विधाओं का अवलंबन आरोग्यवर्द्धन हेतु ज्यादा असरकारक है व प्रभावी है और इस अध्ययन के परिणामों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस दिशा में जागरूकता और प्रमाणित तथ्यों को प्रस्तुत करने वाला यह अध्ययन अत्यंत उपादेयी और सामयिक कहा जा सकता है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

युवाओं की ऊर्जा एवं बुजुर्गों का अनुभव



'उनकी परवाह मत करो, उनके पास तो बस शिकायतें ही शिकायतें हैं।' एल्विन टोएफलर ने अपनी मशहूर किताब फ्यूचर शॉक में इसको अभिव्यक्त किया है। शायद यह हमेशा से रहा है कि पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को नासमझ और भटका हुआ समझती है और नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की परवाह नहीं करती। यह इसी मतभेद और विरोधाभास का नतीजा है कि दोनों पीढ़ियाँ हमेशा एकदूसरे के प्रति विरोधाभासी होती हैं।

अब आज के दौर को ही लें। साहित्यकारों से लेकर समाजशास्त्रियों तक की एक मुकम्मिल पुरानी पीढ़ी, आज के युवाओं को बेपरवाह, लापरवाह, भटकी हुई और गलत दिशा का राही मानती है; जबकि किशोर इस विस्फोटक सूचना के प्रौद्योगिकी युग में पुरानी पीढ़ी को चुका हुआ समझता है।

पुरानी पीढ़ी के पारंपरिक बुद्धिजीवी नई पीढ़ी को अपने ढंग से परिभाषित करने की कोशिश कर रहे हैं और नई पीढ़ी उनकी इस हास्यास्पद कोशिश पर तरस खा रही है। नई पीढ़ी के साथ अपने दबाव और अपनी समस्याएँ होती हैं तो यह भी सही है कि उसकी अपनी एक सहूलियत भी होती है।

नई पीढ़ी अगर पुरानी पीढ़ी से कुछ मामलों में पीछे होती है तो बहुत मामलों में आगे भी होती है, लेकिन यह विरोधाभास ज्यादातर लोगों की समझ में नहीं आता। इसलिए नई और पुरानी पीढ़ी के बीच मतभेद होते हैं। दोनों ही पीढ़ियाँ एकदूसरे के महज नकारात्मक पहलुओं पर ही दृष्टि केंद्रित करती हैं और नतीजा यह होता है कि दोनों एकदूसरे को समझ नहीं पातीं और खारिज कर देती हैं।

कुछ बुजुर्गों का कहना है कि नई पीढ़ी पूरी तरह से मुगालते में है। वह भटकी हुई है। भ्रम में जी रही है। नई पीढ़ी जिसे अपनी सफलता, अपनी आजादी, रंगों और सपनों से भरी अपनी दुनिया मान रही है, वह दरअसल एक धोखा है और हकीकत में वह उसके पतन की प्रक्रिया है।

नई पीढ़ी को लगता है कि वह नृत्य कर रही है, लेकिन वह नृत्य नहीं कर रही, बल्कि उनके पैरों के नीचे की धरती हलचल करते हुए खिसक रही है। दरअसल उनकी उछल-कूद उनके पैरों के नीचे से खिसकती जमीन का नतीजा है।

अगर इस कल्पना की नकारात्मकता की तह तक पहुँचेंगे तो केवल कल्पना ही नजर आती है। आखिर नई पीढ़ी क्यों और कैसे इस कदर मुगालते में हो सकती है? क्या उसके सपने काल्पनिक हैं? क्या उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ महज रूमानियत से भरी और अव्यावहारिक हैं? क्या वह मेहनत नहीं करती? क्या वह नया नहीं सोचती? क्या उस पर बेहतर साबित होने के दबाव नहीं हैं? क्या वह कल्पनाशील नहीं है? क्या वह दुनिया के तमाम खतरों से परिचित नहीं है?

हैरानी होती है, जब कोई पूरी पीढ़ी के बारे में एकतरफा नजरिया बना लेता है और वह भी बेहद नकारात्मक नजरिया। नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी शायद इसलिए समझ नहीं पा रही है, क्योंकि बदलाव की जिस रफ्तार से नई पीढ़ी गुजर रही है और बदलाव की जिस तेज रफ्तार में नई पीढ़ी ने आँखें खोली हैं, उससे पुरानी पीढ़ी कदमताल कर पाने में खुद को असमर्थ पा रही है।

इस पीढ़ी ने वास्तविक ग्लोबल जेनरेशन की अवधारणा के विकास क्रम के दौर में आँखें खोली हैं और पुरानी पीढ़ी ने सिर्फ नीति-वचनों में ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे आप्त वचन पढ़े हैं। इस पीढ़ी का भावनाओं से कम, वास्तविकता से ज्यादा लेना-देना है। पुरानी पीढ़ी वास्तविकताओं में कम और भावनाओं में ज्यादा जीती है।

यह पीढ़ी अगर सचमुच में ग्लोबल जेनरेशन है, भूमंडलीय पीढ़ी है तो इसका मतलब सिर्फ यह नहीं है कि नई पीढ़ी सिर्फ और सिर्फ बुराइयों या खामियों का ही

वैश्विक विस्तार कर रही है। नई पीढ़ी अपनी खूबसूरत, मौलिक ऊर्जा, कल्पनाओं, क्षमताओं, कोशिशों और सपनों को भी एकदूसरे के साथ बाँटती है।

इसी युग ने हिंदुस्तानी युवाओं को डिस्कवरी और हिस्ट्री जैसे चैनल भी दिए हैं, जो इतना ज्ञान परोसते हैं, जो बड़ी-बड़ी लाइब्रेरियों तक में नहीं है। अगर ग्लोबल जेनरेशन एकदूसरे के ऐबों से रूबरू हुई है तो एकदूसरे की खूबियों से भी तो परिचित हुई है। आज कितने बच्चे हैं, जो दुनिया के किसी भी कोने के बारे में सटीक और वास्तविक जानकारी रखते हैं।

यह सब इसी इंटरनेट के सूचना विस्तार का ही तो नतीजा है। पुरानी पीढ़ी को लगता है कि नई पीढ़ी सिर्फ-और-सिर्फ बुराइयाँ सीखती है। खराब लोगों में भी अच्छाइयाँ होती हैं और अच्छे लोगों में भी खराबियाँ होती हैं। नया और भविष्य, अगर इतने ही खराब होते तो दुनिया कभी आगे न बढ़ती, बल्कि आगे बढ़ने के बजाय पीछे खिसकती जाती।

जबकि तथ्य, आँकड़े और इतिहास इस बात की तस्दीक करते हैं कि दुनिया का लगातार विकास हो रहा है। इनसान लगातार मानवीय हो रहा है, दोस्ताना हो रहा है और दुनिया लगातार बेहतर हो रही है। कुछ थोड़े-से क्षेत्रों को छोड़कर जहाँ हम अगर पहले आज से बेहतर थे तो अपनी कोशिशों के कारण नहीं, बल्कि कुछ न करने के कारण।

आवश्यक है कि नई पीढ़ी अपनी नवीन सूचनाओं को परस्पर बाँटे और पुरानी पीढ़ी अपने अनुभवों से उनको नवीन दिशा प्रदान करने में सहायक बने। युवाओं की ऊर्जा, साहस और मनोबल को जब बुजुर्गों का अनुभव एवं समझदारी का साथ मिल जाता है तो सारी समस्याओं का समाधान हो जाता है, जो कि आज के इस दौर में अत्यधिक आवश्यक प्रतीत होता है। ❑

सुंदरवन में एक कौआ रहा करता था। उसने पहले कभी बगुले को नहीं देखा था। बरसात का मौसम आया तो दूर देश से एक बगुला उड़कर वन में आया। उसे देखकर कौए को बड़ा दुःख हुआ। उसे लगा कि उसका रंग कितना काला है; जबकि बगुला कितना गोरा है। उसने जाकर बगुले से कहा—"बगुले भाई! आप तो बहुत गोरे हो। यह देखकर आपको बहुत सुख मिलता होगा।" बगुला बोला—"अरे, मैं तो पहले से ही दुःखी हूँ, जरा तोते को देखो वो कितने सुंदर दो रंगों से रँगा है। मुझ पर तो एक ही रंग है।" अब दोनों मिलकर तोते के पास पहुँचे तो तोता बोला—"अरे मैं तो तुम दोनों से भी ज्यादा दुःखी हूँ, जरा मोर को देखो वो कितने सुंदर रंगों से रँगा हुआ है।" अब सब मिलकर मोर के पास पहुँचे तो देखा कि मोर को मारने उसके पीछे शिकारी लगा हुआ है। मोर के सुरक्षित होने पर उन्होंने मोर से अपनी बात कही तो मोर बोला—"भाइयो! मेरा तो जीवन मेरे रंगों के कारण ही असुरक्षित हो गया है। ये रंग न होते तो आज मैं तुम लोगों की तरह चैन की बँसी बजा रहा होता।" अब सबकी समझ में आया कि भगवान ने हर प्राणी को मौलिक बनाया है। किसी को छोटा, किसी को बड़ा नहीं बनाया है। यदि हम असंतुष्ट रहना चाहें तो हर परिस्थिति में असंतोष के कारण ढूँढ़ लेंगे, पर यदि संतुष्ट रहना चाहें तो भी हर परिस्थिति में संतोष के कारण उपलब्ध हैं।

गंगा माँ के प्रति हमारा सामूहिक दायित्व



गंगा भारत की संस्कृतिवाहिनी, जीवनदायिनी अमृतधारा है, जिसके किनारे देश की लगभग आधी आबादी प्रत्यक्ष रूप से आबाद है। सभ्यता-संस्कृति की विकासयात्रा में इसकी अहम भूमिका रही है। जो श्रद्धा का भाव इस नदी के प्रति जनमानस में भारत और इसके बाहर रहा है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। यह संभवत: एकमात्र नदी है, जिसे स्वर्ग से अवतरित माना जाता है।

भगवान विष्णु के चरणनख से निस्सृत, ब्रह्मा जी के कमंडलु में वास करने वाली तथा शिव की जटाओं से इस धरती पर अवतरित होने वाला यह दिव्य प्रवाह ऐसी लौकिक विशेषताओं को लिए है, जो इसे विशिष्ट स्थान दिलाती हैं। हर युग के कवियों, साहित्यकारों, विचारकों, आध्यात्मिक विभूतियों और सम्राटों ने इसका गुणगान किया व इसको श्रद्धाभाव से अपनाया। विदेशों तक में इसकी गूँज रही है।

आश्चर्य नहीं कि देश की तमाम नदियों को किसी-न-किसी रूप में गंगा जी से जोड़कर देखा जाता है। देव संस्कृति की सभ्यता-संस्कृति की कहानी बहुत हद तक गंगा जी से जुड़ी हुई है। रामायण, महाभारतकाल अथवा पौराणिककाल; गंगा जी के साथ हम मानव इतिहास की विकासयात्रा के साक्षी होते हैं। दक्ष प्रजापति कनखल में गंगातट शिव-सती के युग की साक्षी देते हैं।

ऋषिकेश से लेकर देवप्रयाग तक गंगातट पर भगवान राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सहित कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ के अवशेष त्रेतायुग में ले जाते हैं। गंगातट पर ही भीम, द्रौपदी, पांडवों और महर्षि व्यास की गाथाओं सहित तमाम ऋषियों की तप:स्थलियाँ महाभारतकाल का स्मरण कराती हैं।

तुलसीदास से लेकर महाकवि कालिदास की रचनाओं में इसके दिव्य स्वरूप का स्वर्णिम इतिहास प्रकट होता है। इसी तरह मुगलकाल से लेकर अँगरेजों के समय तथा वर्तमान काल तक गंगा के महिमागान के प्रसंग इसकी लौकिक एवं अलौकिक विशेषताओं को दरसाते हैं।

भारतीय संस्कृति में आस्था रखने वालों के लिए तो गंगा मैया साक्षात् देवीस्वरूपा हैं और यह अकारण ही नहीं है। स्वर्गलोक एवं त्रिदेवों से सीधी जुड़ी होने के कारण व हिमालय में शिव की जटाओं से अवतरित होने के कारण तमाम जलधाराएँ गंगा जी का ही स्वरूप हैं, हालाँकि इसका पूर्णस्वरूप देवप्रयाग संगम से स्पष्ट होता है।

आश्चर्य नहीं कि गंगोत्तरी से प्रवाहित भागीरथी की धारा के साथ जुड़ने वाली तमाम छोटी-बड़ी धाराओं को गंगा के नाम से जोड़कर देखा जाता है। मैदान में उतरने के बाद तमाम नदियाँ अपने अस्तित्व को गंगा जी में मिलाकर गंगास्वरूपा ही हो जाती हैं। प्रयागराज में यमुना नदी व सरस्वती गंगा जी में आ मिलती हैं। इसी तरह छोटी-बड़ी नदियाँ आगे मार्ग में गंगा जी में समाकर गंगास्वरूपा हो जाती हैं।

गंगा के किनारे बसे प्रयागराज एवं हरिद्वार में ही चार महाकुंभों में से दो के आयोजन का संयोग बनता है, जो स्वयं में गंगा जी के विशेष महत्त्व को दरसाते हैं। गंगा जी के किनारे ही तमाम ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्त्व के तीर्थ अवस्थित हैं। गंगारूपी संस्कृति धारा न केवल इससे जुड़े लोगों की आस्था का सिंचन करती है, आत्मशांति प्रदान करती है; बल्कि यह इसके तट पर बसे लौकिक जीवन का भी आधार है।

गोमुख से गंगासागरपर्यंत 2525 किमी० की महायात्रा में 8,61,400 वर्गकिमी० में फैला इसका जलग्रहण क्षेत्र पाँच प्रांतों से होकर गुजरता है। देश की 47 प्रतिशत कृषियोग्य भूमि को इसका जल सिंचित करता है। इस तरह किसान की आजीविका और देश की अर्थव्यवस्था का यह एक बड़ा आधार है। भारतीय जीडीपी में इसके उल्लेखनीय योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

इसके गुणकारी जल की चर्चा पूरे विश्व में होती रही है। औषधीय गुणों से युक्त जड़ी-बूटियों एवं खनिज लवणों को समेटे गंगा जी की एक-एक बूँद अमृततुल्य मानी गई है।

फ्रेंच पर्यावरणविद् ई०एच० हेकिन के अनुसार— गंगाजल में पाँच ऐसे बैक्टिरिया हैं, जो दीर्घकाल तक इसे गुणकारी व पीने योग्य बनाए रखते हैं और साथ ही इसकी

रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं। कितने ही अन्य वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर इसकी गुणवत्ता को साबित किया जाता रहा है, लेकिन संस्कृति की धारा, विकास की इस संवाहिनी के साथ हमने क्या बरताव किया है, यह गंभीर चिंतन का विषय है।

माँ व देवी का दरजा पाने वाली गंगा नदी वर्तमान में किस दशा में है, यह चिंता का विषय है। 940 छोटे-बड़े बाँध एवं बैराज इसके नैसर्गिक प्रवाह को रोकते हैं, जो इसके जल की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं तथा इसके अनियंत्रित दोहन का कारण बनते हैं। गैरनियोजित शहरीकरण के कारण छोटे कस्बों से लेकर नगर, महानगरों की गंदगी ढोने के लिए गंगा मैया अभिशप्त हैं।

हजारों गटर व गंदे नालों का सड़ाँध मारता द्रव्य सीधे माँ गंगा में प्रवाहित हो रहा है। इसके साथ पर्यटकों व आस्थावानों का पॉलीथिन, प्लास्टिक कचरा, पूजन सामग्री, मूर्ति विसर्जन सब इसमें समाहित होते हैं व इसको दूषित करते हैं। अधजले शवों का प्रवाह इसकी स्थिति को और बदतर करता है। इसमें गिर रहा लाखों टन कचरा गंगा जी के प्राकृतिक रूप से घुलित ऑक्सीजन के स्तर को बुरी तरह से प्रभावित करता है, जिससे इसमें पल रहे जीव-जंतु एवं जलज वनस्पतियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विदित हो कि गंगा नदी 143 मत्स्य प्रजातियों का घर है, जिनमें से गंगा डॉल्फिन सहित 29 से अधिक प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं। वस्तुतः गंगा मैया के साथ अमानवीय बरताव की कहानी इसके मायके से ही प्रारंभ हो जाती है, जो उत्तराखंड को पार करने के बाद उत्तर प्रदेश से होते हुए बिहार एवं पश्चिमी बंगाल तक निर्बाध रूप से जारी रहती है।

गोमुख से गंगासागरपर्यंत इसका स्वरूप क्रमशः दम तोड़ता नजर आता है। एक आकलन के अनुसार गोमुख से गंगासागर तक 138 नाले 6087 एमएलडी गंदगी छोड़ते हैं, जिनमें उत्तराखंड में 14, उत्तर प्रदेश में 45, बिहार में 25 और पश्चिम बंगाल में 54 नाले शामिल हैं, जहाँ से मैला जल सीधे गंगा नदी में गिर रहा है।

गंगा किनारे 97 शहर 2953 एमएलडी सीवेज गिराते हैं, जिनमें आधे का ही शुद्धीकरण (ट्रीटमेंट) हो पाता है। इनके साथ 764 औद्योगिक इकाइयाँ गंगा जी के जल को विषाक्त करती हैं, जिनमें 687 तो अकेले उत्तर प्रदेश में हैं। एक आकलन के अनुसार 1109 उद्योग 669 एमएलडी प्रदूषणकारी अपशिष्ट गंगा जी में गिराते हैं, जिसमें चीनी, बिसलेरी, पेपर, चमड़ा और टेनरियाँ मुख्य उद्योग हैं।

इस सबके साथ ब्रह्मद्रव्य कहे जाने वाले गंगाजल के हालात गंभीर हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार बड़े शहरों में गंगाजल आचमन योग्य नहीं रह गया है। इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है कि जिसे हमने माँ का दरजा दिया है, वह इस हालात में दम तोड़ रही है।

गंगाजल के शुद्धीकरण व संरक्षण के लिए कोई प्रयास न हो रहे हों, ऐसी बात भी नहीं है। सरकारी स्तर पर तमाम छोटी-बड़ी योजनाएँ क्रियान्वित होती रही हैं, जिनमें अब तक अरबों रुपये पानी की तरह बहाया जा चुका है, लेकिन परिणाम संतोषजनक नहीं हैं।

तमाम योजनाएँ भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में उलझकर दम तोड़ती रही हैं। गैरसरकारी स्तर पर भी शांतिकुंज के ऐतिहासिक निर्मल गंगा अभियान सहित कई पारमार्थिक संस्थाओं ने सराहनीय प्रयास किए हैं, लेकिन इतनी बड़ी योजना के लिए हर स्तर पर सहयोग अपेक्षित है।

राष्ट्रहित की वृद्धि में लगे रहना ही देवताओं की उपासना करना है। —*स्वामी रामतीर्थ*

आज समय एकदूसरे पर दोषारोपण का नहीं, बल्कि सामूहिक जिम्मेदारी का है। गंगा जी को दूषित करने वालों के विरुद्ध कड़े कानून बनें, जो धन आबंटित हो रहा है, उसका सही नियोजन हो व भ्रष्ट नेताओं तथा नौकरशाही पर नकेल कसी जाए। साथ ही आवश्यकता गंगा से जुड़े हर घर-गाँव व नगर-महानगर की जनता को इसके संरक्षण के साथ जोड़ने की है; क्योंकि बिना जनसहभागिता के इतना विशाल कार्य संभव नहीं।

इस कार्य में आम जनता को भी जागरूक होना होगा तथा इस संबंध में अपने पावन दायित्व को समझना होगा। हर स्तर पर संवेदनशीलता एवं जिम्मेदारी से भरा व्यवहार महत्त्वपूर्ण है, जिससे कि इसके पुनरुद्धार की संभावनाएँ यथाशीघ्र संभव हो पाएँ। युगों से समस्त प्राणिजगत् का कल्याण करती आ रही माँ गंगा के प्रति यही हमारा नैतिक एवं आध्यात्मिक कर्त्तव्य है। ❑

गरीबी और अमीरी की विषमता का विष



देश में विषमता का विष लगातार बढ़ रहा है। एक ओर धनवानों की संख्या बढ़ रही है तो दूसरी ओर गरीबों की तादाद उनके मुकाबले कई गुना अधिक गति से बढ़ रही है। अमीरों और गरीबों के बीच बढ़ती दूरियों को कम न करने की खामोशी चिंताजनक है।

भारत इस साल रूस और ब्रिटेन को पीछे छोड़कर अमेरिका और चीन के बाद दुनिया का ऐसा देश बन गया है, जहाँ सबसे ज्यादा धनी 97 अरबपति हैं। दूसरी ओर देश की 30-35 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे गुजर-बसर कर रही है। ऐसी विकराल आर्थिक विषमता केवल हमारे देश में ही नहीं, बल्कि दुनिया भर में है।

ऑक्सफॉम के एक सर्वे के मुताबिक विश्व की आधी संपत्ति पर विश्व के केवल एक प्रतिशत लोगों का अधिकार है। सन् 2020 में विश्व के एक प्रतिशत सबसे अमीर लोगों के पास बाकी की 99 प्रतिशत आबादी से ज्यादा संपत्ति होगी। दूसरी तरफ आज विश्व में 9 में से 1 व्यक्ति के पास खाने के लिए पर्याप्त पैसे नहीं हैं।

ये आँकड़े इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि हम जिस दुनिया में रह रहे हैं, वहाँ आर्थिक विषमता विकराल रूप लेती जा रही है। अमीर और ज्यादा अमीर होते जा रहे हैं और गरीब भिखारी। यह एक हकीकत है, एक कड़वी सच्चाई है। यह आर्थिक असमानता अचानक पैदा नहीं हुई है। यह प्रक्रिया लंबे समय से चली आ रही है।

इस अध्ययन के मुताबिक सन् 2010 में दुनिया के 80 सबसे अमीर लोगों के पास 1.3 ट्रिलियन डॉलर की संपत्ति थी, जो चार साल यानी सन् 2014 में ड्योढ़ी होकर 1.9 ट्रिलियन डॉलर हो गई। यह बढ़ती असमानता दुनियाभर के सभी सोचने-समझने वाले लोगों को झकझोर रही है। यह सही है कि दुनिया में पहले के मुकाबले समृद्धि आई है एवं आम लोगों का जीवनस्तर पहले से सुधरा है, किंतु इसके साथ आर्थिक विषमता ने भी विकराल रूप धारण कर लिया है।

इस आर्थिक केंद्रीकरण से लोगों के मन में लोकतंत्र को लेकर भी सवाल उठ रहे हैं और यह धारणा बनती जा रही है कि सारे कायदे-कानून अमीरों के लाभ के लिए बनाए जा रहे हैं। स्पेन, ब्राजील, भारत, दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटेन और अमेरिका में सर्वेक्षण से पता चलता है कि बहुसंख्य लोग यह मानते हैं कि कानून को अमीरों के पक्ष में तोड़ा-मरोड़ा जाता है। अमेरिका में 65 प्रतिशत गरीब तो यह मानते हैं कि कांग्रेस अमीरों के फायदे के लिए कानून बनाती है।

आज दुनिया के ज्यादातर देश आर्थिक उदारवाद और बाजारवाद के रास्ते पर चल रहे हैं। अमेरिका, यूरोप और ऑस्ट्रेलिया ही नहीं भारत, बल्कि चीन सहित एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कई देश आर्थिक उदारवाद के रास्ते पर चल रहे हैं और इस रास्ते पर चल कर उन्होंने चरम गरीबी से मुक्ति पाई है और समृद्धि हासिल की है। आर्थिक उदारवाद को विश्वस्तर पर चुनौती देने वाली कोई विचारधारा नहीं रह गई है, मगर आर्थिक उदारवाद को उसके अंदर से ही चुनौती जरूर मिलती रहती है।

कई विचारक मानते हैं कि आर्थिक उदारवाद से समृद्धि भले ही आए, मगर असमानता भी आती है। असमानता और आर्थिक उदारवाद का चोली-दामन का साथ है, इसलिए समृद्धि और विकास चाहिए तो असमानता की अपरिहार्य बुराई को भी स्वीकार करना होगा। पिछले कुछ वर्षों से पश्चिमी देशों में आर्थिक विषमता एक अहम मुद्दा बनती जा रही है। बुद्धिजीवी और चिंतक इस पर गंभीर चिंता जता रहे हैं।

'पेरिस स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' के प्रोफेसर थामस पिकेटी ने निरंतर बढ़ती असमानता के बारे में दो दशकों के अध्ययन के बाद **'कैपिटल इन ट्वंटी फर्स्ट सेंचुरी'** नामक पुस्तक लिखी है, जो पश्चिमी देशों में काफी चर्चित रही है। बढ़ती असमानता का गंभीरता से जायजा लेने वाली

इस पुस्तक को कई दशकों बाद अर्थशास्त्र की महत्त्वपूर्ण पुस्तक माना जा रहा है।

उसमें पिछले 200 वर्षों के आँकड़ों का विश्लेषण है कि पश्चिमी देशों यानी अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन में आर्थिक विषमता तेजी से बढ़ी है। इस कारण विश्वमुद्राकोश, शैक्षणिक संस्थानों से लेकर व्हाइट हाउस तक इस पुस्तक पर तीखी बहस हुई। विषय की गंभीरता और प्रासंगिकता को देखते हुए पुस्तक की तुलना मार्क्स की 'कैपिटल' के साथ की जा रही है। अब तक अमेरिका यही मानता रहा कि अमीर और गरीब का भेद यूरोपियों की प्रकृति है, मगर वहाँ भी आर्थिक गैर-बराबरी सबसे पेचीदा सवाल है।

आधुनिक तकनीक और पूँजीवादी उत्पादन-पद्धति के कारण विश्व में अभूतपूर्व धन आया है। सन् 2011 में ऑक्यूपाई वॉल स्ट्रीट आंदोलन ने एक फीसद बनाम 99 फीसद का नारा दिया था। संदेश था कि 99 प्रतिशत लोगों की कीमत पर एक प्रतिशत आबादी ऐश्वर्य का भोग कर रही है। इसलिए वह अमीरी और संपत्ति के पुनर्वितरण की बात करने लगा है। इसलिए इस किताब ने लोगों का ध्यान खींचा है, जो कहती है कि संपत्ति का केंद्रीकरण इस व्यवस्था का स्वभाव है और वह संपत्ति पर वैश्विक कर लगाने का सुझाव देती है।

पिकेटी का मानना है कि कई ताकतवर शक्तियाँ ऐसी हैं, जो असमानता को कम कर सकती हैं। जिनमें वे ज्ञान और कौशल के प्रसार का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं। इसमें भी कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी दिखाई देती हैं, जो असमानता को बढ़ाती हैं। आजकल कंपनियों के सीईओ अक्सर अपने वेतन बेतहाशा बढ़ा लेते हैं; जिसका काम की उत्पादकता के साथ कोई संबंध नहीं होता है। इससे भी असमानता बढ़ रही है।

अमेरिकी मजदूरों का वास्तविक वेतन सातवें दशक से स्थिर है, लेकिन अमेरिका में ऊपर के एक प्रतिशत लोगों का वेतन 165 प्रतिशत और ऊपर के 0.1 प्रतिशत लोगों का वेतन 362 प्रतिशत बढ़ा है। इसके साथ पिछले चालीस वर्षों में सबसे ऊपर के तबके के लिए टैक्स की दर 70 प्रतिशत से गिरकर 35 प्रतिशत रह गई है।

क्या हम ऐसी दुनिया में रहना पसंद करेंगे, जिसमें इतनी विषमता हो कि 1 प्रतिशत लोगों के पास बाकी 99 प्रतिशत लोगों जितनी संपत्ति हो। ऐसे में जरूरी है कि कर-चोरों पर लगाम कसी जानी चाहिए व सार्वजनिक खरच से स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसी सेवाएँ सबको मुफ्त उपलब्ध कराई जानी चाहिए। कर का बोझ श्रम एवं उपभोग से क्रमिक रूप से हटाते हुए पूँजी और धन पर डाला जाना चाहिए और न्यूनतम वेतन तय कर उस पर सख्ती से अमल कराया जाना चाहिए।

इन कदमों को आज विश्व में स्थिरता के लिए जरूरी माना जा रहा है। इनमें नया कुछ भी नहीं है। वास्तविक प्रश्न राजनीतिक इच्छाशक्ति का है। आखिर हम असमानता की तल्ख सच्चाई से कब तक आँख चुराएँगे।

सच तो यह है कि पूँजी ने हमारे तंत्र पर एक तरह से कब्जा कर लिया है और वह लगातार पूरी दुनिया को नियंत्रित कर रही है। उसकी चिंता आम आदमी नहीं, बल्कि मुनाफा है। आर्थिक उदारीकरण आकर्षक शब्दावली में आम आदमी के शोषण का हथियार बनता जा रहा है। इसे रोका जाना समय की सर्वप्रमुख जरूरत है। ❑

यह सपना नहीं सच्चाई है। जिसे अगले दिनों हर कोई मूर्तिमान होते हुए देखेगा। इसे भविष्यवाणी नहीं समझना चाहिए, एक वस्तुस्थिति है, जिसे हम आज अपनी आँखों पर चढ़ी दूरबीन से प्रत्यक्ष देख रहे हैं। कल वह निकट आ पहुँचेगी तो हर कोई उसे प्रत्यक्ष देखेगा। अगले दिनों समाज का समग्र परिवर्तन करके रख देने वाला एक भयंकर तूफान विद्युत गति से आगे बढ़ता चला आ रहा है, जो इस सड़ी दुनिया को समर्थ, प्रबुद्ध, स्वस्थ और समुन्नत बनाकर ही शांत होगा। *—परमपूज्य गुरुदेव*

कर्त्तव्य-कर्म को करने से मिलती है परम गति



(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की तेईसवीं किस्त)

[श्रीभगवान के द्वारा कहे गए सोलहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधि को छोड़कर मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को, न सुख को और न ही परम गति को प्राप्त हो पाता है। शास्त्रोक्त विधि का अर्थ आध्यात्मिक पथ से लेना चाहिए—वह पथ जिस पर चलने से आत्मकल्याण का पथ प्रशस्त होता है। यहाँ पर श्रीभगवान ने एक शब्द प्रयोग किया है, वे कहते हैं—कामकारतः अर्थात स्वच्छंद, मनमाना, उच्छृंखल आचरण करने वाला। ऐसा कहने के पीछे का अभिप्राय उन लोगों की ओर इशारा करना है, जो आंतरिक दुर्गुणों की उपेक्षा करके बाहरी आडंबरों को ही सत्य मान बैठते हैं; जबकि वास्तविक मूल्य तो आंतरिक गुणों का ही होता है। इसीलिए भगवान कहते हैं कि 'न पराम् गतिम्' उनको परम गति की प्राप्ति नहीं हो पाती; क्योंकि वो आत्मिक दृष्टि से शुद्ध नहीं हो पाए होते हैं।

मानव समाज में विभिन्न प्रकार के लोग, विभिन्न वृत्तियों वाले लोग मिलते हैं। कुछ ऐसे होते हैं, जो कि इस दृश्य जगत् के ऐश्वर्य भोग को ही जीवन का मूल उद्देश्य मानकर उसी को पाने का उपाय एवं प्रयत्न करते रहते हैं एवं उसी की प्राप्ति में अपने इस देवदुर्लभ जीवन को नष्ट कर बैठते हैं। जो भी कर्म उन्हें उनकी वासना की आपूर्ति में सहायक दिखता है, वही कर्म उनके लिए करणीय बन जाता है। इस प्रकार के मनुष्य आसुरी वृत्ति के होते हैं। उनके द्वारा मनमानी दृष्टि से किए गए कर्म दुःख और संतापरूपी फल प्रदान करते हैं, जिन्हें शास्त्रीय दृष्टि से हेय कहा जाता है और इसलिए ऐसे मनुष्य हेयमार्गी होते हैं। दूसरे लोग वे हैं, जो शास्त्रोक्त कर्म करते तो हैं, धार्मिक आयोजनों में निरत भी रहते हैं, परंतु आंतरिक दृष्टि से निर्मलता को वे प्राप्त नहीं हो पाए होते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें सुख व वैभव मिलते हैं और पुण्यप्रकाश के बढ़ने के कारण उनको सिद्धियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं, परंतु परम गति उन्हें तब भी प्राप्त नहीं होती। ऐसे व्यक्ति प्रेयमार्गी कहलाते हैं। परम गति की प्राप्ति के अधिकारी वे व्यक्तित्व बनते हैं, जिनके हृदय में जन्म-मृत्यु के प्रवाह से सदा के लिए मुक्त हो जाने की उत्कट अभिलाषा रहती है। ऐसे व्यक्तित्व श्रेयमार्गी होते हैं और आत्मकल्याण के पथ के अनुगामी होते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान इस अध्याय का अंतिम श्लोक कहते हैं—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ *24*॥

शब्दविग्रह—तस्मात्, शास्त्रम्, प्रमाणम्, ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ, ज्ञात्वा, शास्त्रविधानोक्तम्, कर्म, कर्तुम्, इह, अर्हसि।

शब्दार्थ—इससे (**तस्मात्**), तेरे लिए (**ते**), इस (**इह**), कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की व्यवस्था में (**कार्याकार्यव्यवस्थितौ**), शास्त्र (ही)(**शास्त्रम्**), प्रमाण है। (**प्रमाणम्**), ऐसा (**एवम्**), जानकर (तू) (**ज्ञात्वा**), शास्त्रविधि से नियत (**शास्त्रविधानोक्तम्**), कर्म (ही) (**कर्म**), करने (**कर्तुम्**), योग्य है (**अर्हसि**)।

अर्थात तेरे लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की अवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्त्तव्य कर्म करने योग्य है एवं तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्त्तव्य कर्म करने चाहिए।

▶ **'नारी सशक्तीकरण' वर्ष** ◀

आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों के विषय में भगवान ने इस अध्याय में पहले कहा था कि वे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के मध्य का भेद नहीं जानते एवं शास्त्रोक्त विधि को त्यागकर मनमाना आचरण करते हैं। श्रीभगवान ने अर्जुन को इसी अध्याय में दैवी संपदा से युक्त व्यक्तित्व कहा है और इसीलिए वे अर्जुन को कहते हैं कि तेरे लिए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्धारण शास्त्रों के आधार पर होगा; क्योंकि वे अर्जुन को दैवी वृत्ति का व्यक्तित्व ठहराते हैं।

ये कहने के पीछे का एक अर्थ यह भी है कि दैवी वृत्ति वाले व्यक्तित्वों को ही कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में चिंता होती है और इसीलिए उस स्थिति में वे यह जानना चाहते हैं कि सत्य पथ क्या है। जैसा गीता के प्रारंभ में अर्जुन कहते हैं कि क्या जो युद्ध हम करने जा रहे हैं, यह शास्त्रनिहित है? ऐसे समय में मेरा क्या कर्त्तव्य हो—इसी भाव के साथ वे अपनी जिज्ञासा श्रीभगवान के सम्मुख व्यक्त करते हैं। इसके विपरीत आसुरी स्वभाव वाले व्यक्तियों को न तो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की चिंता होती है और न शास्त्रोक्त आचरण की। वे तो मात्र अपनी वासना की पूर्ति के लिए आचरण करना जानते हैं और उसी की पूर्ति में निरत रहते हैं।

शास्त्रोक्त आचरण का अर्थ मात्र शास्त्र में लिखी बातों से नहीं है, बल्कि उन आध्यात्मिक सिद्धांतों के अनुशीलन से भी है, जिनका पालन आत्मकल्याण के लिए आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी तो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध छोटे-छोटे प्राणी करा देते हैं और उसके लिए आगमशास्त्रों के अध्ययन की भी आवश्यकता नहीं रह जाती। इसके लिए मात्र इतना जरूरी हो जाता है कि व्यक्ति की भावना आध्यात्मिक चिंतन से अभिपूरित हो।

इस संदर्भ में महाभारत के शांतिपर्व में एक प्यारी कथा आती है। कथा आती है कि शकुनिलुब्धक नाम का एक बधिक था। उसका मुख्य कार्य तो पशु-पक्षियों को मारना ही था। उन्हीं का शिकार वह हर दिन करता था।

एक दिन वह दिनभर घूमता रहा, पर उसे शिकार के लिए कोई प्राणी नहीं मिला। थक-हारकर वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। तभी अकस्मात् बादल घिर आए और वहाँ जोरों से आँधी चलने लगी। थोड़ी देर में मूसलाधार वर्षा भी प्रारंभ हो गई। उस वृक्ष पर चिड़िया और चिड़ा रहा करते थे। वर्षा होने के कारण चिड़िया थोड़ा जल्दी घोंसले को लौट आई। बधिक ने उसे देखा तो उसने उसको पकड़कर अपने पिंजड़े में बंद कर लिया। जब चिड़ा वापस घोंसले पर लौटा तो चिड़िया को वहाँ न देखकर वह विलाप करने लगा।

चिड़े को रोता देखकर चिड़िया बोली—"हे प्रियतम! आप इतना विलाप क्यों कर रहे हैं? हमारे वृक्षरूपी घर पर आज एक अतिथि आए हैं। अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का कर्त्तव्य होता है। आप अपने कर्त्तव्य का पालन करिए। इनको ठंढ न लगे, इनकी क्षुधा मिटे—ऐसा आपका कर्त्तव्य होना चाहिए। मैं पिंजड़े में बंद हूँ अन्यथा मैं इस कार्य को पूर्ण करती।" चिड़े ने अपनी चोंच से सूखे पत्ते, लकड़ियाँ इकट्ठी कीं और किसी के घर से अग्नि की चिनगारी लाकर वहाँ अग्नि स्थापित की। उस गरमी से बधिक का जाड़ा दूर हुआ। भोजन की कोई और व्यवस्था न देखकर वह चिड़ा स्वयं उस अग्नि में कूद पड़ा।

गुरुवाक्य में विश्वास करना चाहिए। गुरु ही सच्चिदानंद हैं, सच्चिदानंद ही गुरु हैं, उनकी बात पर बालक की तरह विश्वास करने से ही ईश्वरप्राप्ति होती है।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

यह दृश्य देखकर बधिक का मन हाहाकार कर उठा। वह सोचने लगा कि मैं कितना क्रूर, निर्दयी व्यक्ति हूँ। यह पक्षी होकर बलिदान का भाव रखता है और मैं मनुष्य होकर कैसे आसुरी कर्म करता हूँ। ऐसा सोचते हुए उसने चिड़िया को पिंजड़े से निकाल दिया। अपने पतिदेव को जलता हुआ देखकर वह चिड़िया भी उस अग्नि में कूद पड़ी। यह दृश्य देख बधिक ने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिए और गहन वन में तपस्या के भाव से निकल पड़ा।

इस प्रेरक कथा से ही बोध हो जाता है कि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान सबको होता है और जो व्यक्ति नरक के तीनों द्वार—काम, क्रोध और मोह के वशीभूत होकर कर्म न करते हुए सत्कर्मों का आश्रय लेते हैं, वे ही सद्गति को, परम गति को प्राप्त होते हैं। उसी पथ पर चलने का संकेत श्रीभगवान अर्जुन को करते हैं।

(क्रमशः)

जीवन की श्रेष्ठतम परिभाषा

हमारे जीवन की श्रेष्ठतम परिभाषा है—सफलता, सार्थकता और संतुष्टि। ये तीनों भाव मिलकर समग्र जीवन का निर्माण करते हैं। हर कोई अपने जीवन में इन्हें प्राप्त करना चाहता है और प्राप्ति के लिए सतत प्रयासरत रहता है। यह अवश्य है कि सभी के प्रयास अपनी-अपनी तरह के, अपनी सोच के अनुसार हैं। जिंदगी के कुछ नियम व सिद्धांत होते हैं। हमारे किसी भी तरह के प्रयासों की सफलता इन्हीं पर निर्भर होती है।

यदि कोई अपनी जिंदगी की शुरुआत इन सिद्धांतों-नियमों को ध्यान में रखकर करता है तो उसकी प्रत्येक चाहत पूरी होती है, सारे प्रयास सफलता को प्राप्त होते हैं, लेकिन पहली शर्त यह है कि जिंदगी की शुरुआत सही हो, यहाँ प्रायः हर व्यक्ति चूक कर जाता है। वास्तविक सच्चाई तो यह है कि हम उतने होश-हवास में, सजगता में जिंदगी की शुरुआत नहीं करते, जितनी की होनी चाहिए।

कभी थोड़ी गहराई से, जरा करीबी से हम स्वयं को परखने की कोशिश ही नहीं करते। कभी यह एहसास कर ही नहीं पाते कि हमारे जीवन का यह अंतिम पड़ाव नहीं है, इसकी कई कड़ियाँ जीवन के बाहर भी जुड़ी हैं। हमारे शास्त्र कहते हैं कि जो भी इस संसार में आया है, वह पीछे कुछ अधूरा छोड़कर आया है। उस अधूरेपन को पूरा करने के लिए ही हमें जन्म मिला है। हमारे इस जीवन की सफलता और सार्थकता का रहस्य इसी अधूरेपन को खोज लेने और पूरा करने से संबद्ध है।

यही हरेक के लिए यथार्थ जीवन जीने का राजमार्ग है। अब बात यह है कि जिंदगी की सही शुरुआत कहाँ से की जाए? कैसे की जाए? तो सभी के लिए इसका एक सूत्र है—जीवन-दृष्टि का विकास। जब तक जीवन-दृष्टि विकसित नहीं होती, स्वयं के प्रति नजरिया स्पष्ट नहीं होता, तब तक जीवन की सही शुरुआत संभव नहीं है। जीवन-दृष्टि का निर्माण उन एहसासों से होता है जिन्हें हम स्वयं के प्रति तथा अपने रिश्तों-संबंधों एवं परिवेश से जुड़ी संवेदनशीलता के द्वारा ग्रहण करते हैं।

स्वयं के भीतर यह संवेदनशीलता जैसे-जैसे गहरी होती जाती है, वैसे-वैसे हमारे एहसास तीव्र होते जाते हैं। एहसासों के तीव्र और सघन होने पर हमारी जीवन-दृष्टि में भी सूक्ष्मता, पैनापन और स्पष्टता विकसित होते चले जाते हैं। ऐसी सुविकसित जीवन-दृष्टि के प्रकाश में ही हम अपनी जिंदगी के अधूरेपन को खोज पाने में सफल होते हैं। वास्तव में यह जीवन-दृष्टि ही हमें सही जीवन लक्ष्य का बोध कराती है और उसे प्राप्त करने हेतु सबसे कुशल मार्गदर्शक सिद्ध होती है।

जीवन का सिद्धांत है कि इस संसार में जिस किसी की भी जिंदगी विकसित जीवन-दृष्टि के साथ गतिमान है, वह नित नई सफलताओं के शिखर गढ़ती हुई संतुष्टि के अथाह समुद्र में आश्रय प्राप्त करती है। जीवन-दृष्टि का होना, और असंतुष्टि का होना दोनों एक साथ असंभव है। जिनकी जीवन-दृष्टि विकसित हो चुकी है, उनके जीवन में असफलता और असंतुष्टि का कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। पूज्य गुरुदेव ने जीवन-दृष्टि के विकास की दो अत्यंत व्यावहारिक विधियाँ बताई हैं। पहली आत्ममूल्यांकन से जुड़ी है और दूसरी भाव संवेदना के विस्तार से संबद्ध है।

आत्ममूल्यांकन से 'स्व' के प्रति सजगता और स्पष्टता विकसित होती है। पूज्य गुरुदेव ने आत्मबोध और तत्त्वबोध की साधना के रूप में आत्ममूल्यांकन की सर्वसुलभ और श्रेष्ठतम विधि हम सभी को सभी के लिए सिखाई है। जो परिजन इसे नियमित करते हैं, वे इसका महत्त्व और लाभ दोनों जानते हैं। अन्य जिज्ञासुओं के लिए यही कहना है कि प्रातः और रात्रिकालीन अर्थात सुबह उठने और रात्रि विश्राम के समय की न्यूनतम दो-दो मिनिट की इस आत्ममूल्यांकन की साधना को सबसे सरल और चमत्कारिक समझना चाहिए। नियमित करने वालों को कुछ ही दिनों में इसके लाभ प्रत्यक्ष होने लगते हैं। हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों में जो स्थान एवं महत्त्व आँखों का है, ठीक वही महत्त्व जीवन विकास के आयामों में आत्ममूल्यांकन का है।

आँखें यदि बंद हों तो आस-पास के सभी सुखद दृश्य, वस्तुएँ आदि अंधकार के गर्त में छिपे रहते हैं, परंतु आँखें खुलते ही सब कुछ प्रत्यक्ष और स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

ऐसे ही आत्ममूल्यांकन से प्राप्त होने वाली जीवन-दृष्टि के अभाव में हमारी जिंदगी की सभी क्षमताएँ, विशेषताएँ अंधकार में दबी रहती हैं, लेकिन जब आत्ममूल्यांकनरूपी आँखों से हम स्वयं के भीतर झाँकते हैं तो अपने ही जीवन की छिपी हुई विशेषताएँ, क्षमताएँ, योग्यताएँ और विभूतियाँ सहज दिखने लगती हैं।

आत्ममूल्यांकनहीनता को जिंदगी का अंधापन कहा जा सकता है। आँखों का अंधापन जिंदगी पर उतना भारी नहीं पड़ता है, जितना कि आत्ममूल्यांकनहीनता से जीवन-दृष्टि के अभाव में उत्पन्न अंधापन।

जीवन-दृष्टि उत्पन्न होती है भीतरी स्पष्टता, सजगता से और यह सजगता केवल आत्ममूल्यांकन से ही संभव हो पाती है। इसके बगैर हम कभी भी अपने जीवन को, इसमें अंतर्निहित क्षमताओं को नहीं देख पाते। स्वयं से ही अनभिज्ञ-अपरिचित बने रहते हैं।

इसकी प्रक्रिया में ही हम स्वयं को जानने-पहचानने-समझने की कोशिश करते हैं और सही अर्थों में स्वयं का परिचय पाते हैं। यह जीवन-दृष्टि के विकास का प्रथम और अनिवार्य पहलू है।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार जीवन-दृष्टि के विकास की तकनीकों में दूसरा क्रम भाव-संवेदना के विस्तार का है। भावनाएँ सभी में मौजूद हैं, परंतु इनका दायरा अत्यंत सीमित एवं संकीर्ण होता है। अत: भाव-संवेदना को स्वार्थ-संकीर्णता के दायरे से बाहर लाना आवश्यक है।

तभी हम अपने आस-पास के वातावरण को, परिवेश को, संबंधों को और इस दुनिया के विविध रंगों को देखने और समझने में समर्थ होते हैं। भावनात्मक संकीर्णता हमारी जीवन-दृष्टि को बौना बनाती है। अत: इससे उबरकर ही हम जिंदगी के सही मार्ग का चयन कर पाते हैं।

पूज्यवर के जीवन सूत्रों में दो से पाँच मिनिट की नियमित उपासना हमारे भावनात्मक विकास को शिखर तक पहुँचाने में समर्थ है। रुचि और परिस्थिति अनुसार जितने भी समय की उपासना संभव हो, परंतु वह नियमित हो, तब इसका हमारी भाव-संवेदना पर चमत्कारी प्रभाव पड़ता है।

यहाँ उपासना का तात्पर्य पूजा-पाठ न होकर ऊँचे विचारों, भावों अथवा इष्ट-आराध्य के श्रेष्ठ गुणों के नियमित सान्निध्य से है। ऐसी उपासना से हमारी जीवन-दृष्टि में गहनता, दूरदर्शिता, व्यापकता और सुदृढ़ता जैसी विशेषताएँ आती हैं एवं साथ ही आत्मिक-आध्यात्मिक लाभ भी होता है।

आत्ममूल्यांकन से जीवन-दृष्टि उत्पन्न होती है और उसका पोषण व विकास भावनाओं के विकास से संयुक्त होता है, जो उपासना द्वारा सहज संभव हो पाता है। सही सुविकसित जीवन-दृष्टि की प्राप्ति जिंदगी की सच्ची शुरुआत का पहला कदम है, जहाँ से जीवन की सफलता, सार्थकता और संतुष्टि के मार्ग की सीढ़ियाँ प्रारंभ होती हैं। जीवन जीने की सच्ची चाहत वालों के लिए यही एक उपयुक्त उपाय है, वरना जिंदगी को ढोने वाले, भाग्य-परिस्थितियों की विवशता में उलझे और भटके हुए लोग सर्वत्र दिखाई दे जाते हैं। ❑

कितने पुण्यफल ऐसे हैं, जिनके सत्परिणाम प्राप्त करने के लिए अगले जन्म की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, पर लोक-साधना का परमार्थ ऐसा है, जिसका प्रतिफल हाथोंहाथ मिलता है। किसी दु:खी के आँसू पोंछते समय असाधारण आत्मसंतोष होता है। कोई बदला न चुका सके तो भी उपकारी मन-ही-मन सम्मान करता है, आशीर्वाद कहता है। इसके अतिरिक्त एक ऐसा दैवी विधान, जिसके अनुसार उपकारी का भंडार कभी खाली नहीं होता, उस पर ईश्वरीय अनुग्रह बरसता रहता है और जो खरचा गया है, उसकी भरपाई करता रहता है। *—परमपूज्य गुरुदेव*

प्राचीन भारतीय शिक्षा के सूत्र एवं सिद्धांत



शिक्षा जीवन का आधार है। शिक्षा का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश के बच्चे देश की अमूल्य निधि हैं। यदि देश की शिक्षा योजना सुंदर, उपयोगी और देश तथा मानवता के कल्याण के लिए बनाई गई तो देश के युवक तथा युवतियों का जीवन त्याग व तपस्या से परिपूर्ण होगा। इसके विपरीत देश की शिक्षा शैली दोषपूर्ण हुई तो इस देश का अध:पतन होगा और यह देश कभी भी एकता के सूत्र में नहीं बँध पाएगा।

देश की परिस्थिति के अनुसार शिक्षा शैली में कुछ तो सार्वभौम सिद्धांत होते हैं और कुछ उस देश के जीवन के आदर्श के अनुसार। हमारी शिक्षा-योजना का आदर्श काफी ऊँचा होना चाहिए। भारतीय संस्कृति के सिद्धांतों के अनुकूल ही उसका स्वरूप होना चाहिए। ऋषियों ने जैसे धर्म को अपने अभ्युदय और नि:श्रेयस का साधन बनाया था, वैसे ही उन्होंने शिक्षा को धर्म का सहायक बनाया था।

आदर्श शिक्षा वह है, जिसमें हमारी प्रकृतिप्रदत्त शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक शक्तियाँ पूर्ण विकसित होकर हमें सफल जीवन व्यतीत करने में समर्थ करती हैं। सफल जीवन के उपरांत मोक्ष या मुक्ति दिलवाने में भी शिक्षा सहायक होती है। आदर्श शिक्षा में सात्त्विक बुद्धितत्त्व का विकसित होना बहुत ही आवश्यक है। आदर्श शिक्षा के अंतर्गत चरित्रनिर्माण, समाजसेवा, स्वावलंबन, आत्मविश्वास एवं स्वाध्याय का विशेष महत्त्व है। आदर्श शिक्षा से ही जीवन के नैसर्गिक भावों को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबर्ट का भी कथन है—जिस साधन से हमारी ऊँची प्रवृत्तियाँ नीची प्रवृत्तियों पर विजय पाती हैं; उसी का नाम आदर्श शिक्षा है। सदाचार की विचारधारा में ही शिक्षा सन्निहित है। यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू का कहना है—देश के नागरिक को इस प्रकार की शिक्षा दी जाए कि वह सज्जन और धर्मात्मा बने। आदर्श शिक्षा में लोक-कल्याण की भावना का होना आवश्यक है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें धर्म, नैतिकता, न्याय, उदारता, सहिष्णुता एवं गंभीरता आदि का समावेश था। जीवन का समुन्नत विकास विद्या से ही संभव है। योगीराज भर्तृहरि ने लिखा है—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं,
विद्याभोगकरीयशःसुखकरी विद्या गुरूणांगुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं,
विद्या राजसुपूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः॥

अर्थात विद्या ही मनुष्य का अधिक-से-अधिक रूप और ढका हुआ गुप्त धन है, विद्या ही भोग, यश और सुख देने वाली है तथा विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश में विद्या बंधु के समान सहायता करती है। विद्या देवता है, उसकी राजाओं के यहाँ भी पूजा होती है, धन की नहीं। विद्याहीन पुरुष पशु के समान हैं।

भारतीय संस्कृति में अठारह विद्याओं का वर्णन आता है—चार वेद, छह वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्म, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गंधर्वशास्त्र व अर्थशास्त्र। सभी विद्याओं का एक ही लक्षण है—नैतिक व सफल जीवन की प्राप्ति। प्राचीन भारतीय शिक्षा में उन सिद्धांतों का समावेश है, जिन्हें आज के शिक्षाशास्त्री भी उपादेय और आवश्यक मानते हैं। भारतीय शिक्षा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का समन्वय है।

प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि भारत सहित सारे विश्व के कष्टों का कारण यह है कि शिक्षा केवल मस्तिष्क के विकास तक सीमित रह गई है। उसमें धार्मिक और आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश नहीं है। आदर्श शिक्षा एक बालक की प्रवृत्तियों को सही मार्ग प्रदान करती है और उसके मस्तिष्क को क्रियाशील बनाती है। प्राचीन भारतीय शिक्षा शैली में सबसे बड़ी व्यवस्था इस प्रकार थी—समुचित शिक्षा देने के लिए यह अनिवार्य था कि शिक्षणीय बालक की मनोवृत्ति का भरपूर अध्ययन किया जाए और उसको आवश्यकता, रुचि तथा योग्यता के अनुकूल शिक्षा दी जाए।

प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्श को विदेशी शिक्षा शास्त्रियों ने भी स्वीकार किया है। इटली की मांटेसरी शिक्षा-प्रणाली हमारी इसी शिक्षा-प्रणाली से मिलती-जुलती है। मांटेसरी प्रणाली में शिशु के विद्यालय को 'बच्चों का घर' कहा जाता है और उसमें उन्हें खेलने-कूदने तथा अपना व्यक्तित्व विकसित करने की पूरी छूट दी जाती है।

ये विद्यालय शहर या गाँव से काफी दूर शांत वातावरण में बने होते हैं। खेल-खेल में ही उन्हें शिक्षा दी जाती है। बच्चे के मानसिक, शारीरिक व बौद्धिक विकास का पूरा ध्यान रखा जाता है। अमेरिका के शिक्षाशास्त्री उसूई का सिद्धांत है कि हम शिक्षा द्वारा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दें कि बालक को संपूर्ण मानव जाति के सामाजिक अभ्युत्थान में सक्रिय होने का अवसर मिले और उसके हृदय में लोक-कल्याण तथा लोकसेवा की भावना बनी रहे।

भारतीय शिक्षा में नम्रता और सहिष्णुता कूट-कूटकर भरी हुई है। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली के अनुसार गुरु शिष्य को आशीर्वाद देता है—तुम शिष्ट, बली और कल्याणकारी बनो, यही मेरी शिक्षा का सारांश है, उद्देश्य है। भारतीय शिक्षा माता-पिता, गुरु व बंधुओं का आदर करना सिखाती है। प्राचीन गुरुओं या विद्यालयों में छात्र की योग्यता बढ़ाने का उत्तरदायित्व अध्यापकों पर होता था, पर आज स्थिति विपरीत है। छात्र की योग्यता कैसी है व उसमें कितनी प्रगति हो रही है—इसकी चिंता स्कूल, कॉलेज के अध्यापकों को नहीं है। छात्र व अध्यापक एकदूसरे से दिन-प्रतिदिन अलग होते जा रहे हैं। न अध्यापकों का छात्रों के प्रति स्नेहभाव है न छात्रों की अध्यापकों के प्रति श्रद्धा।

ट्यूशन आदर्श शिक्षा के लिए घातक है। इसके कारण शिक्षा का स्तर ऊँचा नहीं उठ पाता। ट्यूशन एक प्रकार से शिक्षा का व्यापार है। इसके कारण शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य प्राप्त नहीं हो पाता। हमारे अध्यापकों की दयनीय दशा हमारे बच्चों की हीनवृत्ति, पाठ्यपुस्तकों का स्तर, आधुनिक विद्यालयों में पश्चिमी सभ्यता का बढ़ता हुआ प्रभाव, अनुशासन की समस्या आदि ऐसी समस्याएँ हैं, जिनका निवारण आदर्श शिक्षा के लिए अनिवार्य है। प्रारंभिक शिक्षा में सुधार भी आवश्यक है। प्रारंभिक शिक्षा विशेष आदर्श व सिद्धांतों को लेकर दी जानी चाहिए।

बालक की प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाना चाहिए और उसी के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। आजकल शिक्षा में सुधार हेतु समितियाँ बनती हैं, नियम पास किए जाते हैं, पर शिक्षा में जैसा सुधार होना चाहिए, वैसा नहीं हो पा रहा है। इसका कारण है प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों को न अपनाना।

आज शिक्षा की वर्तमान पद्धति तथा छात्रों के रहन-सहन में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। नई शिक्षा-प्रणाली में व्यावहारिकता और अनुशासन पर विशेष ध्यान देना होगा। प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार करने पर ही राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। प्राचीन भारत में तीन बड़ी शिक्षण संस्थाएँ थीं, जिन्हें प्राचीन काल के विश्वविद्यालय कहा जाता है—(1) तक्षशिला, (2) नालंदा, (3) विक्रमशिला।

तक्षशिला की कीर्ति अमर है। यह भारत की प्राचीनतम शिक्षण संस्था थी। जो पंजाब प्रांत के रावलपिंडी नगर (अब पाकिस्तान में) से लगभग तीस किलोमीटर उत्तर पश्चिम में स्थित थी। इस नगरी के खंडहर अभी तक विद्यमान हैं। यहाँ चाणक्य जैसे अर्थशास्त्री तथा राजनीतिज्ञ एवं कुमारजीव जैसे शल्य चिकित्सक अध्यापक थे। यहाँ देश-विदेश से हजारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे।

इतिहासकारों का कथन है कि राजा भरत के दो पुत्र थे—तक्ष और पुष्कर। तक्ष ने तक्षशिला व पुष्कर ने पुष्पावती नगर बसाये। पेशावर पुष्पावती का ही अपभ्रंश है। ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व से लेकर छठी शताब्दी पर्यंत तक्षशिला अभ्युदय के शिखर पर रही। इसके पश्चात हूण आक्रमणकारियों ने तथा तुर्कों ने इस नगरी को लूटकर इसका वैभव नष्ट कर दिया। मिट्टी के बरतन, ताड़ पत्तों पर लिखे हस्तलिखित ग्रंथ एवं अन्य आयुध यहाँ खुदाई के समय प्राप्त हुए हैं। यहाँ बौद्ध भिक्षुओं के विहार व स्नानागार भी मिले हैं।

नालंदा व विक्रमशिला का वैभव एवं ज्ञान अक्षुण्ण था। तक्षशिला के बाद नालंदा विश्वविद्यालय काफी लोकप्रिय था। यह नूतन-पुरातन ज्ञान-विज्ञान का विद्यापीठ था। दस हजार विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। भारतीय ज्ञान, विज्ञान, ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, शिल्प, आयुर्वेद, संस्कृत एवं कला की शिक्षा यहाँ सुचारु रूप से प्रदान की जाती थी।

नागार्जुन यहाँ के कुलपति थे, जो उस समय के प्रसिद्ध रसायनवेत्ता थे। वे लोहे को पारे व अन्य जड़ी-बूटियों की मदद से सोने में परिणति कर देते थे। जब बौद्ध धर्म की

विजय पताका सारे एशिया महाद्वीप में फहरा रही थी, तब नालंदा ही ज्ञान-विज्ञान का केंद्र था। ईसा की तीसरी शताब्दी से बारहवीं सदी तक नालंदा का वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। सुश्रुत यहाँ ही आयुर्वेद के शिक्षक थे, वे प्रसिद्ध शल्य चिकित्सक थे।

नालंदा विहार राज्य के राजगृह से दस मील दक्षिण दिशा में स्थित था। इसके भग्नावशेष नालंदा स्टेशन से एक मील दूर पर मिलते हैं। यहाँ खुदाई में नागार्जुन की एक मूर्ति मिली है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यहाँ रहकर बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया था। नालंदा में सुंदर सुदृढ़ कक्ष बने थे। चीन, जापान, स्याम, सुमात्रा, जावा, बर्मा, लंका, कंबोज एवं बाली आदि देशों से सैकड़ों की संख्या में विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए नालंदा में प्रवेश लेते थे। प्रधानाचार्य शीलभद्र अपने सहयोगियों की सहायता से आने वाले विद्यार्थी की बुद्धि-परीक्षा लेते थे। उसमें उत्तीर्ण होने पर ही उसे उसकी रुचि के अनुसार विषय का अध्यापन कराया जाता था।

छात्रों के रहने के लिए तीन विशाल छात्रावास थे, जिनमें तीन सौ कक्ष थे। छात्रों को सात्त्विक आहार दिया जाता था। जिनमित्र, शीलभद्र, भद्रसेन, चंद्रपाल, मणिभद्र, ब्रह्मगुप्त, शांतरक्षित आदि मेधावी अध्यापक नालंदा में ही कार्यरत थे। तीन बड़े पुस्तकालय भी यहाँ थे—(1) रत्नसागर, (2) विद्या कुटीर, (3) ग्रंथागार। इन पुस्तकालयों में हजारों हस्तलिखित ग्रंथ थे। नालंदा का ज्ञान-वैभव उस समय नष्ट हो गया, जब मुसलिम सेनापति बख्तियार खिलजी ने तेरहवीं सदी में बिहार पर आक्रमण किया। उसके सैनिकों ने तीनों पुस्तकालयों को जला दिया।

ये ग्रंथ लगातार चार महीने तक जलते रहे। तीसरी महान शिक्षण संस्था विक्रमशिला थी, जो बिहार के ही भागलपुर जिले में स्थित थी। इस विद्यालय के चारों ओर तोरण द्वार थे। हरेक प्रवेश द्वार पर एक-एक प्रवेशिका परीक्षा गृह था। इन सभी द्वारों पर प्रवेशार्थी की बुद्धि-परीक्षा ली जाती थी।

अध्यापन विभाग में दीपंकर श्रीज्ञान, कलमरक्षित, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, ब्रह्मदत्त, बोधिभद्र एवं विष्णु शर्मा जैसे विद्वान छात्रों को ज्ञान प्रदान करते थे। विक्रमशिला में भी विदेशों से छात्र ज्ञानार्जन के लिए आते थे।

इस विश्वविद्यालय में तंत्र विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। अनेक तांत्रिक गृह यहाँ विद्यमान थे। तारादेवी की एक भव्य मूर्ति यहाँ स्थित थी। वैदिक साहित्य यहाँ प्रचुर मात्रा में लिखा गया व उस पर विशद चर्चा होती थी।

बारहवीं शताब्दी में मुसलिम शासक मुहम्मद बिन बख्तियार ने इस पर आक्रमण कर इसे तहस-नहस कर दिया। हजारों विद्यार्थी एवं अध्यापक इसकी रक्षा के लिए युद्ध में उतर पड़े, पर मौत के घाट उतार दिए गए।

उपरोक्त शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त नगरों, कस्बों एवं गाँवों में कई पाठशालाएँ विद्यमान थीं। वहाँ विद्वान शिक्षक छात्रों को अध्यापन कराते थे। राजा-महाराजाओं द्वारा इन शिक्षण संस्थाओं को भरपूर सहायता मिलती थी।

भारतीय शिक्षा का आदर्श अनुकरणीय है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य को पुनः से याद करें व इसे केंद्र में रखकर ही ज्ञानार्जन करें। भारतीय संस्कृति के सिद्धांत एवं सूत्र ही शिक्षा को नवीन दिशा व दशा प्रदान कर सकते हैं, जो आज आवश्यक हो गया है। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

जिएँ ईमानदारी का जीवन



परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधनों की यह मौलिकता है कि उनमें परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त जीवनसूत्रों की अत्यंत ही मनोरम एवं हृदयस्पर्शी व्याख्या की गई है। ऐसे ही प्रस्तुत अपने इस उद्‌बोधन में गुरुदेव द्वारा दिए गए ईमानदारी के सूत्र की एक गंभीर विवेचना वंदनीया माताजी करती हुई दिखाई पड़ती हैं। वे कहती हैं कि मनुष्य के जीवन में एक ईमानदारी से परिपूर्ण दृष्टिकोण का जो मूल्य होता है, वो किसी भी अन्य साधन के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। परमवंदनीया माताजी अनेकों उदाहरणों को देने के अतिरिक्त स्वयं पूज्य गुरुदेव का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि पूज्य गुरुदेव ने जीवन में जो भी सिद्धियाँ प्राप्त कीं, वो ईमानदारी से भरा जीवन जीने के कारण ही प्राप्त कीं। उनकी उनके लेखन के प्रति ईमानदारी, साधना के प्रति ईमानदारी एवं जीवन उद्देश्य के प्रति ईमानदारी ने ही उन्हें कितने उच्च स्थान पर पहुँचाया। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

ईमानदारी के संस्कार

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बेटियो! आत्मीय प्रज्ञा परिजनो। ईमानदारी से जीवन जीने को व्यक्ति यह समझते हैं कि यह घाटे का सौदा है। घाटे का नहीं; वरन वह नफे का ही सौदा होता है। आत्मतुष्टि तो अहं में होती है, चालबाजी में होती है, बेईमानी में होती है; पर वस्तुतः जो शांति और संतोष मिलता है, जो संस्कार मिलते हैं, वे ईमानदारी में ही निहित हैं। ऐसा हमारा विश्वास है। केवल बिश्वास ही नहीं, बल्कि लंबे जीवन का अनुभव भी है।

मथुरा में एक पेशकार रहते थे। वे जब सुबह जाते थे, तो साइकिल पर अपनी खुरपी साथ लेकर के जाते थे और शाम को जब आते थे, तो घास काटकर लाते थे; क्योंकि उनके घर में बकरी और गाय पल रही थी। उतना पैसा उनके पास नहीं था कि बाजार से घास खरीदकर मँगाएँ और जानवरों को खिलाएँ। शाम को वे थके-माँदे घर आते थे।

उनके कपड़ों का यह हाल होता था कि फटे हुए कपड़े होते थे और जहाँ-तहाँ कपड़ों में थेगड़ी लगी होती थी। जो फजूलखर्ची और उच्छृंखल लोग थे, उनकी निगाहों में वे बददिमाग और पागल थे, ऐसा वे समझते थे, पर वस्तुतः ऐसा कुछ नहीं था। उनका ईमानदारी का जीवन था। जिस समय वे कचहरी में जाते थे, तो उनके सम्मान के लिए जज भी एक बार उठकर खड़े हो जाते थे और अगर कोई बात पेशकार जी ने कह दी, तो उस बात को जज की यह हिम्मत नहीं होती थी, कि वे टाल जाएँ।

बच्चो! यह क्या था? उन्होंने ऐसे संस्कार बना रखे थे कि हमारा जीवन ईमानदारी का है, इसको देखिए और जो बेईमानी का जीवन है, उसको देखिए। जब उनका देहावसान हो गया, तब उनके चार लड़के थे। घर में इतना पैसा नहीं था कि उनकी विधवा पत्नी अपने बच्चों का लालन-पालन अच्छे तरीके से कर सके। उन्हें पढ़ा-लिखा सके और किसी योग्य बना सके, लेकिन ईमानदारी की छाप ऐसी पड़ी उनके बॉस पर, अधिकारियों पर कि जब वे नहीं रहे, तो एक बच्चे को कोई ऑफिसर ले गया। एक को कोई दूसरा ऑफिसर ले गया।

इस तरीके से चारों लड़कों को चार ऑफिसर ले गए अपने साथ और उन्हें पढ़ाया-लिखाया। अच्छी-अच्छी नौकरी पर लगाया। अगर कोई ऐसा लोभी-लालची होता, तो भले से मकान-कोठी बना सकते थे। बच्चों को अय्याशी के लिए धन भी छोड़ सकते थे; लेकिन अपनी ईमानदारी की छाप, सदाचार की छाप लोगों पर नहीं रहती। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके बच्चे भी बड़े सुयोग्य और ईमानदार हुए। यह मैं आपको ईमानदारी के संदर्भ में बता रही हूँ।

लकड़हारे की कहानी

एक लकड़हारा था। एक पेड़ के नीचे सो रहा था। कदाचित् उसकी जो कुल्हाड़ी थी, वह खो गई। कुल्हाड़ी के खोने से वह रोने लगा। उस पेड़ के ऊपर एक दैत्य रहता था। वह ऊपर से उतरकर आया। दैत्य ने पूछा—"तू क्यों रो रहा है?" उस लकड़हारे ने कहा—"मेरी कुल्हाड़ी खो गई है।" उसने कहा—"कुल्हाड़ी ऐसी कौन-सी बड़ी चीज है? तेरी कुल्हाड़ी लोहे की है?" लकड़हारे ने कहा—"आपके लिए तो लोहे की है, पर मेरे पास तो पैसे नहीं हैं। मेरे लिए तो वह सोने-चाँदी से भी ज्यादा कीमती है। मैं कहाँ से लाऊँ, मेरे पास कुछ है नहीं?"

उस दैत्य ने लकड़हारे को सोने-चाँदी की कुल्हाड़ी दी, ले कुल्हाड़ी। लकड़हारे ने कहा—"महाराज! मेरी नीयत को मत डिगाइए। मुझे सोने-चाँदी का लोभ नहीं चाहिए। मुझे तो मेरी वही लोहे की कुल्हाड़ी चाहिए? उसे मैं प्राणों से प्यारी चीज की तरह रखता था, जो कि मेरी जीविका चलाती थी। उसी से मुझे संतोष और शांति प्राप्त होती थी। मुझे तो वही कुल्हाड़ी चाहिए।" अंत में उसको वही कुल्हाड़ी मिली। उसने लोभ और लालच को ठोकर मार दी।

इसी तरीके से महाभारत में एक कथा आती है कि ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिए पांडवों ने निमंत्रण दिलवाया। एक ब्राह्मण जो सदाचारी था, ईमानदारी की कमाई खाता था, वह रोने लगा। युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण को यह मालूम था कि सारे-के-सारे अतिथि जो हमने बुलाए थे, वे आ गए; लेकिन उनमें से एक ब्राह्मण नहीं आया। उस तक खबर भेजी। ब्राह्मण आ तो गया, पर फूट-फूटकर रोने लगा। उन्होंने रोने का कारण पूछा—"भाई क्या बात है? हमारी दावत में कोई कमी है क्या? तुम्हारे स्वागत में कोई कमी है क्या? या हमने आपको जो बुलाया है, तो सम्मानपूर्वक नहीं बुलाया? क्या बात है, जरा बताइए तो सही?"

उस ब्राह्मण ने एक बात कही—"आप हैं राजा और मैं हूँ ब्राह्मण। अगर आपका कहना नहीं मानता, आपके यहाँ नहीं आता, तब भी बुरा था और मैं आता हूँ, खाता हूँ, तो मेरी जीवात्मा नहीं मानती है; क्योंकि खाने का मतलब है कुधान्य खाना। मैं आपके यहाँ खाऊँगा, तो मुझे ऐसा लगेगा कि मैंने कुधान्य खा लिया। अगर कुधान्य खा लिया, तो मुझे वह कैसे पचेगा? मैं तो स्वयं अपना ही कमाता हूँ और खाता हूँ और स्वयं ही बोता हूँ, स्वयं ही काटता हूँ। स्वयं अपना भोजन बनाता हूँ और अपना ही खाता हूँ। मैं दूसरे के यहाँ भोजन नहीं करता? आप राजा हैं तो क्या? मैं यह मानता हूँ कि आप युधिष्ठिर हैं; लेकिन है तो यह पराया धन ही न? मेरी कमाई का उपार्जित धन तो नहीं है। उपार्जित धन नहीं है, तो मैं किस प्रकार इसको खा सकता हूँ? इसलिए आपके

महर्षि प्रवर ने यज्ञ करने बैठे अपने शिष्यों से पूछा—"वत्स! तुमने इस यज्ञ हेतु उपयुक्त पात्रता अर्जित की या नहीं? प्रकृति को पोषित किया या नहीं?"

शिष्य आश्चर्य से बोले—"गुरुदेव! प्रकृति के पोषण का इस कर्मकांड से क्या संबंध है? ये दोनों तो भिन्न कर्म जान पड़ते हैं।"

महर्षि प्रवर बोले—"पुत्र! यह सृष्टि और कुछ नहीं, एक बृहद यज्ञ ही तो है, जो मनुष्य और प्रकृति के मध्य संबंधों से पुष्ट है।"

उन्होंने आगे समझाया—"नदी तुम्हें जल देती है, पर लेती कुछ नहीं। वायु तुम्हें जीवन देता है, लेता कुछ नहीं। बिना प्रकृति पोषित किए, मनुष्य का अस्तित्व ही कहाँ?" यज्ञ का सच्चा दर्शन यही है।

निमंत्रण में मैं आना नहीं चाहता था, लेकिन आपने बुलाया, तो मैं आ जरूर गया हूँ, पर मुझे क्षमा किया जाए और मुझे मेरे घर जाने की आज्ञा दी जाए।''

ईमानदारी की विजय

इस बात पर युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण तीनों रोने लगे कि यह ब्राह्मण हमसे बड़ा है। हमने जो यज्ञ किया है, जो भोज कराया है, वह उस कीमत पर कराया है कि हमारे भाई-भाइयों में, चाचा-ताऊ के भाई-भाइयों में खून-खराबा हुआ। महाभारत रचा गया और लाखों लोगों का खून बहाया गया। उसके उपरांत हम गद्दी पर बैठे, तो वास्तव में यह हमारा धान्य नहीं है। कुधान्य ही है। यह सोचकर तीनों-के-तीनों रोये। विजय किसकी हुई? ईमानदारी की विजय हुई। संतोष कहाँ प्राप्त हुआ? ईमानदारी में हुआ।

शांति कहाँ मिली? ईमानदारी में मिली, भले से वह जौ की रोटी क्यों न हो, सत्तू की क्यों न हो? वह मोहनभोग से ज्यादा है, मेवा से ज्यादा है, मिठाई से ज्यादा है, फल से ज्यादा है, घी से ज्यादा है, दूध से ज्यादा है। व्यक्ति यदि ईमानदार है, तो उसको रूखी-सूखी रोटी से भी उतना ही बल मिलेगा, जितना घी-दूध खाने वालों को मिलता है। उतना ही उसको जौ की रोटी में, सत्तू में मिलेगा। गरीबों के लिए फल कहाँ रखे हैं? गरीबों के लिए दूध कहाँ रखा है? गरीबों के लिए मेवा कहाँ मुहैया है, पर उनको जो शांति और संतोष मिलता है, वह अमीरों से ज्यादा उनको अपनी गरीबी में प्राप्त होता है।

एक बुढ़िया थी। उसे निमंत्रण देकर बुलाया गया। बुढ़िया ने कहा—''रखिए आप अपना भोज, मेरी कुटिया में तो जो मेरी सूखी रोटी है, मैं सारे दिन घास काटकर के जो कमाती हूँ, मेरे लिए तो वही पर्याप्त है। मेरे लिए तो यही भोज है। आपके यहाँ एक दिन खाने से मेरी जिंदगी थोड़े ही कटेगी; वरन मेरे संस्कार खराब हो जाएँगे। जो संस्कार मैं अपने इस अन्न के द्वारा बनाती हूँ, वे आपके एक दिन के अन्न से नष्ट हो जाएँगे।''

बेटे! यही उसूल हमेशा आचार्य जी का रहा है। वे जब बाहर जाया करते थे, तो वे जौ के सत्तू लेकर जाया करते थे। मैंने उनसे कहा नहीं। बोले—क्यों? मैंने कहा कि ये बच्चे हमारे हैं। गायत्री परिवार हमारा है। युग निर्माण परिवार हमारा है और हमारे साथ में यदि यह सब चला, तो बुरा लगेगा। हमारे ही घर कोई अतिथि आए और वह अपना खाना बाँधकर लाए, तो हमको बुरा लगेगा। जब हमको बुरा लगेगा, तो फिर ये तो हमारे बच्चे हैं। इनके ऊपर भावनात्मक प्रभाव अच्छा नहीं पड़ेगा। आप सत्तू न ले जाएँ, तो अच्छा है। बहुत दिन तक वह चालू भी रहा, फिर मैंने ही आग्रह करके इसे बंद कराया था।

ईमानदारी एक विशिष्ट गुण

ईमानदारी वह गुण है कि इसके सहारे लंबी मंजिल शांति और संतोष से पार की जा सकती है। एक बार एक संत के पास एक व्यक्ति गया। उसने कहा—''मेरा यह जो बच्चा है, मिठाई बहुत खाता है। गुड़ खाता है, यह मानता नहीं है। इसका लिवर बढ़ गया है। डॉक्टर कहते हैं कि इसको मिठाई नहीं देनी चाहिए? इसका पेट खराब हो जाएगा और भी कोई दिक्कत खड़ी हो सकती है, पर यह मानता ही नहीं है। महात्मन्! इसको कोई आशीर्वाद दीजिए। आपके आशीर्वाद से बच्चा मान जाएगा और ठीक हो जाएगा।''

उन्होंने कहा—''ऐसा कर, एक सप्ताह बाद आना।'' उसने सोचा यह तो संत हैं, महान हैं और हमसे कहते हैं कि एक सप्ताह बाद आना। वे हमको टालना चाहते हैं। वह चला तो गया, यह सोचकर कि ये महात्मा हैं। इनके सामने हम क्या कहें कि आप तो अभी दूर कर सकते थे? पर हमको टाल रहे हैं सप्ताह भर के लिए। वह एक सप्ताह बाद आया। उन्होंने पूछा—''तेरे बच्चे ने अब गुड़ खाना, मिठाई खाना छोड़ा कि नहीं छोड़ा?'' उसने कहा—''हाँ, महाराज जी! छोड़ दिया।'' उसने कहा—''आपने तब क्यों नहीं कहा—''जब मैं पहले आया था?'' उन्होंने कहा—''देख! मैं आज आशीर्वाद देने में समर्थ हूँ; क्योंकि मैंने एक सप्ताह से गुड़ नहीं खाया। पहले मैंने अपनी जीभ पर संयम किया कि जो मैं कहने जा रहा हूँ, वस्तुतः वह गुण मेरे अंदर है कि नहीं है।''

बेटे! ईमानदारी से जीवन जीना। बेईमानी से कमाया हुआ धन सारा-का-सारा बरबाद हो जाता है और परिवार के जो व्यक्ति हैं, वे कुसंस्कारी हो जाते हैं। जितना धन उनको मिलेगा, वे उसे सट्टे में लगाएँगे। शराब में उड़ाएँगे, जुए में लगाएँगे, अय्याशी में लगाएँगे; क्योंकि वह हराम का कमाया हुआ होता है। स्वयं की शक्ति से जो उपार्जित होता है, उसमें व्यक्ति को फजूलखर्च करने में दरद होता है।

ईमानदारी की कमाई

पहली बात तो यह है कि ईमानदारी की कमाई फजूलखर्च करने के लिए होती ही नहीं है। वास्तव में ईमानदारी और श्रम से जो कमाया हुआ धन है, वह उतना ही होता है, जिससे पेट भरा जा सके। परिवार का पालन-पोषण किया जा सके। अगर इससे ज्यादा होता है, तो ईमानदार व्यक्ति का यह कर्त्तव्य होता है कि वह स्वयं के बच्चों के लिए ही नहीं, अपितु लोक-मंगल के कार्यों में, जरूरतमंदों की सहायता में उस धन को खरच करे।

पिता की कमाई बेटा क्यों खाएगा? वह अगर समर्थ है, तो पिता के बाद, पिता की कमाई को माता-पिता के श्राद्ध में ही लगाना चाहिए। ईमानदारी का तकाजा तो यही है और बेईमानी का यह है कि हमारे माता-पिता जो धन छोड़ गए हैं, वह हमारे लिए ही खरच होना चाहिए? अगर माता-पिता जीवित हैं, तो बच्चे उनसे झगड़ा करते हैं कि आपने हमें पैदा किया है, तो आपका कर्त्तव्य होता है, फर्ज होता है कि हमारे लिए धन लाइए, क्यों लाइए? किस कारण से लाइए? किसके लिए लाइए? इसकी वजह बताइए? जबकि पढ़ा-लिखाकर नौकरी से लगा दिया है। शादी-ब्याह भी कर दिया है। हर दृष्टि से योग्य बना देने के बाद भी आपको माता-पिता धन क्यों दें, बताइए? बेईमानी कहती है कि धन देना चाहिए।

ईमानदारी कहती है कि नहीं, जो कुछ भी है, उसका उपार्जन हमने नहीं किया है। वह हमारे माता-पिता का है, तो यह धन उन्हीं के निमित्त लगना चाहिए। श्राद्ध के रूप में लगना चाहिए। श्राद्ध का मतलब भोज नहीं होता है कि हम उस धन को भोज में, मिठाई खिलाने में, पान खिलाने में खरच कर दें। नहीं, वह धन तो सत्प्रेरणाओं के लिए, सद्‌विचारणाओं के लिए, सत्कार्यों के लिए खरच करना चाहिए; लेकिन ऐसी सद्‌बुद्धि नहीं आती है; क्योंकि रग-रग में तो बेईमानी और लालच समाया हुआ है। ईमानदारी हमसे कहती है कि मितव्ययिता से चलिए। सद्‌गुण—गुण, कर्म और स्वभाव की श्रेष्ठता—यही व्यक्ति के काम आते हैं। यह ईमानदारी के अंतर्गत आते हैं। श्रमशीलता, मितव्ययिता और शिष्टाचार, यह भी ईमानदारी के अंतर्गत आते हैं। इन गुणों को ग्रहण करना चाहिए और जहाँ बेईमानी का पुट लग रहा है, जहाँ ईमानदारी पर शक है, उसको ग्रहण नहीं करना चाहिए।

एक पेड़ पर हंस का एक जोड़ा बैठा था। हंस और हंसिनी दोनों आपस में बात कर रहे थे। हंसिनी कह रही थी कि राजा जनक बड़े दानी हैं और हंस कह रहा था कि नहीं रैक्य हैं। रैक्य माने गाड़ीवान। जब दोनों बात कर रहे थे, तो राजा जनक वहाँ सुन रहे थे। राजा जनक ने जैसे ही ऊपर की ओर निगाह उठाई, हंस-हंसिनी का जोड़ा वहाँ से उड़ गया। दूसरे दिन राजा जनक ने उस रैक्य को बुलाने के लिए खबर भेजी। रैक्य आया। राजा ने सोचा—हंस और हंसिनी जो बात कर रहे हैं, मेरा और इसका मुकाबला कहाँ? राजा ने उसको बहुत सारा धन दिया और कहा—"तू तो साधारण किसान है न?" उसने कहा—"हाँ, मैं किसान हूँ।" उन्होंने कहा—"तेरी पूर्ति नहीं हो पाती होगी, सो यह धन ले जा?" रैक्य ने कहा—"महाराज जी! मुबारक हो आपके

जब तक अहंकार रहता है, तब तक ज्ञान नहीं होता और न मुक्ति होती है। इस संसार में बार-बार आना पड़ता है। बछड़ा 'हम्बा-हम्बा' (मैं, मैं) करता है, इसलिए उसे इतना कष्ट भोगना पड़ता है। कसाई काटते हैं। चमड़े से जूते बनाते हैं और जंगी ढोल मढ़े जाते हैं। वह ढोल भी न जाने कितना पीटा जाता है, तकलीफ की हद हो जाती है। अंत में आँतों से ताँत बनाई जाती है। उस ताँत से जब धुनिए का धुनहा बुनता है और उसके हाथ में धुनकते समय जब ताँत 'तूँ-तूँ' करती है, तब कहीं निस्तार होता है। तब वह 'हम्बा-हम्बा' (हम-हम) नहीं बोलती, 'तूँ-तूँ' करती है अर्थात हे ईश्वर, तुम ही कर्त्ता हो, मैं अकर्त्ता। तुम यंत्री हो, मैं यंत्र। तुम्हीं सब कुछ हो।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

दान को। मेरे लिए तो मेरी झोंपड़ी और मेरे जो खेत हैं, वही मेरे लिए बहुत हैं। मैं तो उस सूखी रोटी में संतोष कर लेता हूँ। मैं ईमानदारी का जीवन जीता हूँ। इसमें मुझे संतोष है।'' इस बात को सुनकर के राजा जनक शरमिंदा हो गए। उन्होंने कहा—''वास्तव में यह रैक्य ही बड़ा है। इसके सामने मैं छोटा पड़ता हूँ।''

पूज्य गुरुदेव की ईमानदारी

ईमानदारी का जीवन जीना यदि सीखना है, तो आचार्य जी से—गुरुजी से सीखिए, जो अपने एक-एक क्षण, समय के प्रति ईमानदार, वफादार रहे हैं। उन्होंने समय का एक-एक क्षण, एक-एक लम्हा कभी निरर्थक नहीं जाने दिया। पाँच मिनट भी उनके कभी बेकार नहीं गए। समय के साथ ईमानदारी, पैसे के साथ ईमानदारी, वह भी कैसी ईमानदारी ? अपने लिए खरच कम करना। समाज से पाया जरूर, लेकिन वह समाज का ही है, वह अपना नहीं है। जिस दिन उसको खाया जाएगा, उन्हें उलटी हो जाएगी, दस्त हो जाएँगे। वह पचेगा नहीं, यह दान का दिया पैसा पचेगा नहीं। यह समाज का है, तो समाज के लिए, लोक-मंगल के कार्यों में ही खरच होना चाहिए। उन्होंने एक-एक पैसे को इस ईमानदारी के साथ खरच किया है कि शायद ही कोई और व्यक्ति इस ईमानदारी में खरा उतरे, मुझे शक है। हमेशा से उन्होंने ईमानदारी का परिचय दिया है।

साधना में 6 घंटे नित्यप्रति, चाहे जो भी हो; लेकिन उन्हें अपने समय पर उपासना करनी है, तो वह करनी है। उन्होंने हर काम ईमानदारी के साथ किया है। अधिकतर व्यक्ति कहते हैं—''अजी आज नहीं कर पाए, तो हम कल कर लेंगे। आज अमुक काम नहीं किया, तो कल देखा जाएगा। आज उपासना नहीं की, तो कोई बात नहीं, कल और ज्यादा देर तक बैठ लेंगे।'' लेकिन नहीं, ईमानदारी कहती है कि जो काम हाथ में लिया है, हमें ईमानदारी से उसे पूरा करना चाहिए। हम तो नहीं देख रहे हैं, दूसरा कोई और तो नहीं देख रहा है; लेकिन अपनी जीवात्मा तो देख रही है। अपनी जीवात्मा तो धिक्कारेगी, जहाँ बेईमानी होगी। चाहे वह समय हो, चाहे वह किसी के धन के साथ खिलवाड़ हो, कहीं कुछ भी हो, बेईमानी-तो-बेईमानी है।

बेईमानी हमें नीचे गिराती है और ईमानदारी ऊँचा उठाती है। ईमानदारी का तो उनको हमेशा ध्यान बना रहा। साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने ईमानदारी की जिंदगी जी, लेखन में ईमानदारी। उनको लेखन करना है तो हर हालत में, चाहे कोई कैसी भी परिस्थितियाँ हों, उन्होंने लेखन किया। आपको मालूम है 8 जनवरी, 1984 की घटना, जिस घटना से हमारे सारे परिजन हिल गए थे; लेकिन वे नहीं हिले। गुरुजी ने कहा—मुझे तो अवकाश मिल गया। जीवन में कभी अवकाश नाम की चीज नहीं थी। उन्होंने कहा—समय के साथ खिलवाड़ नहीं। हम ईमानदारी के साथ जिए हैं और ईमानदारी से जिएँगे। बीस दिन न जाने उन्होंने कैसे काट लिए ? जब तक टाँके नहीं कटे, उतने दिन तक फिर कलम वापस हाथ में। जितनी देर तक काम करना है, वह होगा ही। लेखन करना है, तो लेखन ही होगा। उपासना करनी है, तो उपासना ही होगी।

उनके जीवन के हर क्षेत्र में ईमानदारी कूट-कूटकर भरी हुई है। पैसे के साथ में, धन के साथ में ईमानदारी। एक-एक पैसा इस तरीके से खरच किया जाता है, मानों हजारों रुपये खरच कर रहे हों, एक पैसा खरच करने में ऐसा महसूस होता है। हजार बार सोचते हैं कि कहीं ऐसा तो नहीं कि हम जनता का पैसा, अपने परिजनों का पैसा कहीं फजूलखर्च तो नहीं कर रहे। कहीं अनावश्यक खरच तो नहीं हो गया। वहीं खरच हुआ, जहाँ उपयोगिता थी अथवा कहीं दूसरी जगह खरच हुआ। हजार बार सोचकर के ईमानदारी के साथ वही किया, जो करना चाहिए था। यह उनके जीवन का रहस्य है।

यह ईमानदारी है। इस ईमानदारी ने कितनी बड़ी मंजिल पार कराई है, वह आप सब जानते हैं। जहाँ तक लंबी मंजिल को पार करके आए हैं और थोड़ा-सा जीवन जो है, भगवान वह भी पूरा करेगा। वे ईमानदारी के साथ जी रहे हैं और आगे भी जीते रहेंगे। यह सबक हमारे परिजनों को भी सीखना चाहिए। जीवन का वो अंश क्यों मुझे आपसे कहने की जरूरत पड़ गई ? इसकी आवश्यकता थी, यह समझाने के लिए कि ईमानदारी क्या चीज होती है ? इसको अपनाने से व्यक्ति को क्या मिलता है ? इससे विश्वास मिलता है, बल मिलता है।

बेटे ! कांग्रेस आंदोलन में उनके पास लाखों रुपये रहते थे। यहाँ यू0पी0 के एक व्यक्ति मिनिस्टर रह चुके हैं। इस समय मुझे उनका नाम याद नहीं है। जब कांग्रेस आंदोलन में चर्चा हुई कि कौन ऐसा हो सकता है, जिसके पास हम पैसा रख सकते हैं और हमको यह विश्वास हो जाए कि हमारा

पैसा सुरक्षित रहेगा। तो वहाँ जगन प्रसाद रावत जी, उन्होंने कहा कि एक स्वयंसेवक है, जिसकी नीयत पर कोई शक नहीं है। वह इतना ईमानदार है, जो समय पर पूरी तरह जागरूक रहता है और दूसरे के पैसे को वह ऐसे समझता है, जैसे वह मिट्टी हो। अगर कुछ रखने के लिए दिया है, तो जी-जान से उसको सुरक्षित रखने के लिए वह अपने जीवन को भी दाँव पर लगा देगा और वैसा ही उनको पाया गया। जब वे बाहर से आते थे, उन सज्जन का शायद केशकर ऐसा ही कुछ नाम था। जब वे आते, तो किवाड़ें खुली हुई मिलती थीं और रोटी भी बनी हुई तैयार मिलती थी। कोई और खाना बनाने वाला नहीं था। ईमानदारी के साथ उन्होंने कहा कि यह लड़का नहीं है। यह भगवान है। यह पूजने लायक है। है तो यह जरा-सा, लेकिन यह पूजने योग्य है।

बेटे! यह है ईमानदारी का प्रतिफल। ईमानदारी ने उन सभी को, जो बड़े थे, उन सभी को छोटा बना दिया। उन्होंने भी यह महसूस किया कि हम बड़े जरूर हैं; लेकिन ईमानदारी में बड़ा यही है। आपसे आज मैंने यह ईमानदारी के संदर्भ में कुछ बातें कही हैं। आशा है कि आप इस पर ध्यान देंगे और उनके जीवन से सीखेंगे कि ईमानदारी किस तरीके से की जा सकती है। ईमानदारी का तात्पर्य यह नहीं होता कि हम अर्थोपार्जन नहीं करेंगे। हमको सीमित धन कमाना चाहिए। नहीं, यह नहीं होता। अर्थोपार्जन जरूर कीजिए; लेकिन अर्थ की उपयोगिता कहाँ है? खरच उस जगह कीजिए। नहीं, यह तो हमारे बेटे के लिए होगा, यह तो हमारी पत्नी के लिए होगा। यह तो बेटी के लिए होगा। नहीं, उनको संस्कार दीजिए। संस्कारवान बनाइए। ईमानदारी सिखाइए, मितव्ययिता सिखाइए। फिर आपके धन की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। आज मैंने आचार्य जी के जीवन के वे सभी संदर्भ सुनाए जो ईमानदारी, सहिष्णुता, सहनशीलता, श्रमशीलता आदि के थे। आशा है कि आप इस पर जरूर ध्यान देंगे।

॥ ॐ शांतिः ॥

नित्य की भाँति संत तुकाराम का एक शिष्य उनके समीप ध्यान लगाने के लिए बैठा। वह जितनी बार ध्यान लगाने का प्रयत्न करता, उसका मन उतना ही अस्थिर हो जाता। आखिरकार वह गुरु के पास समाधान माँगने पहुँचा। उसकी समस्या सुनकर संत तुकाराम बोले—"पुत्र! आज तुमने अन्न कहाँ से ग्रहण किया?" शिष्य ने उत्तर दिया—"गुरुदेव! आज नगरसेठ ने भोज रखा था तो वहीं से अन्न ग्रहण करके आ रहा हूँ।" गुरु गंभीर हुए और बोले—"वत्स! नगरसेठ का धन परिश्रम से उपार्जित नहीं, वरन गरीब लोगों को पीड़ा देकर एकत्रित किया गया है।" थोड़ा रुककर संत तुकाराम आगे बोले—"अन्न जिससे प्राप्त होता है, मन वैसे ही संस्कारों से प्रेरित होता है। अनीति से प्राप्त धन से उपजा अन्न चित्त में उद्विग्नता ही पैदा करेगा।" शिष्य को अपने मन की अस्थिरता का कारण पता चला तो उसने संकल्प लिया कि वह सदैव परिश्रम व ईमानदारी से कमाया हुआ अन्न ही ग्रहण करेगा।

विश्वविद्यालय परिसर से—204

शांति एवं सुलह का केंद्र बना विश्वविद्यालय



मनुष्य के पुरुषार्थ की अपनी संभावना एवं सीमा है तो वहीं भूमि के संस्कार भी उसके उत्थान-पतन में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। जिस प्रकार भूमि की उर्वराशक्ति यदि अधिक हो तो उस भूमि पर कृषि का कार्य बड़ी ही सुगमता एवं सफलतापूर्वक संपन्न हो जाता है; ठीक उसी प्रकार यदि भूमि के संस्कार शुभ एवं कल्याणकारी हों तो वहाँ उपस्थित जनसमुदाय में देवत्व के जागरण की उज्ज्वल संभावनाएँ भी सुनिश्चित हो जाती हैं।

भूमि के संस्कार निवासितों को उस संस्कार के अनुरूप जीवनयापन हेतु उत्प्रेरित करते हैं। भारत की भूमि पुण्यभूमि है और यह व्यक्ति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके उत्तर दिशा में हिमालय से आच्छादित भूमि देवभूमि कहलाती है, जिसे चिरकालीन ऋषियों ने अपनी तपस्या से पवित्र एवं दिव्य बनाया था और जिसके संस्कार तप से आपूरित हैं। यहाँ तप के माध्यम से आत्मोद्धार की जितनी अधिक संभावनाएँ उपस्थित हैं, उतनी और कहीं नहीं। वहीं सांसारिक साधन-सुविधाओं की न्यूनतम उपलब्धता से साधक का ध्यान सहज ही आत्मविषयों की ओर आकर्षित होता है।

प्रश्न उठता है कि भूमि के संस्कार भला किस प्रकार स्थापित होते हैं? यहाँ यह समझना आवश्यक है कि भूमि के संस्कार का निर्माण तब गहनता से स्थापित होता है, जब किसी स्थान विशेष में किसी विशेष प्रकार के कृत्य को दीर्घकाल तक संपन्न किया जाए और उसी के परिणामस्वरूप वह स्थान उस विशेषता से संस्कारित हो उठता है और अनुकूल प्रभाव छोड़ता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा देवभूमि के चयन में गंगा की गोद, हिमालय की छाया एवं सप्त ऋषियों की तप:स्थली को चयनित किया गया, जिसके उत्तम संस्कार दिव्यसत्ता की योजना व पूज्य गुरुदेव के संकल्प को द्रुतगति प्रदान करने में सहायक हो सके। इस देवभूमि में उपस्थित गायत्री तीर्थ शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय इस माने में भी अति विशिष्ट हैं।

देवभूमि उत्तराखंड में हरिद्वार स्थित देव संस्कृति विश्वविद्यालय की विशिष्टता उसके कुलगीत की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से अंकित है, जो यहाँ के अंग-अवयवों को सदैव अपनी गौरव-गरिमा की याद दिलाता है—

मानवी उत्थान का, जो अनवरत आधार है।
देव संस्कृति विश्वविद्यालय सृजन का द्वार है॥
गोद गंगा की, हिमालय की मिली छाया इसे।
दिव्य वातावरण में पोषित मिली काया इसे॥
कुलपिता का है बरसता स्नेह-संरक्षण यहाँ।
कर्म की मिलती उन्हीं से प्रेरणा हर क्षण यहाँ॥
कुल जननी की दिव्य मृदु ममतामयी रसधार है।
देव संस्कृति विश्वविद्यालय सृजन का द्वार है॥
है यहाँ होता प्रखरतम चेतना का जागरण।
आपसी सद्भावना, संवेदना का जागरण॥
यह महामानव बनाने की सुगढ़ टकसाल है।
वासकर इसमें युवाओं की बदलती चाल है॥
विश्व फिर लगता उन्हें अपना सगा परिवार है।
देव संस्कृति विश्वविद्यालय, सृजन का द्वार है॥

पूज्य गुरुदेव की अभिनव संकल्पना देव संस्कृति विश्वविद्यालय समूचे विश्व को एकसूत्र में बाँधने के उद्देश्य से अपने विस्तार-क्षेत्र को निरंतर बढ़ाते चले जा रहा है। जिस क्रम में विश्वविद्यालय परिसर में दिल्ली विधानसभा के सदस्य श्री प्रवीन कुमार जी का आगमन हुआ। उन्होंने प्रतिकुलपति से भेंटवार्त्ता संपन्न की और इस दौरान विश्वविद्यालय की गतिविधियों एवं गुरुदेव के चिंतन पर विचार-विमर्श भी किया। श्री प्रवीन कुमार जी ने स्वयं बताया कि वे बहुत पहले से ही गायत्री परिवार के सदस्य हैं और उन्होंने 10 वर्ष की आयु में परमवंदनीया माताजी से दीक्षा भी प्राप्त की थी।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिवार तब और भी अधिक गौरवान्वित हुआ, जब विश्वविद्यालय परिसर में सिंह साहिब ज्ञानी हरप्रीत सिंह जी, जत्थेदार तख्त श्री दमदमा

साहिब, कार्यकारी जत्थेदार श्री अकाल तख्त साहिब का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शुभागमन हुआ।

राष्ट्रीय सिक्ख संगत के राष्ट्रीय महासचिव, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति समेत वरिष्ठ पदाधिकारियों द्वारा उनका स्वागत किया गया। माननीय प्रतिकुलपति जी से सदाचार भेंट के उपरांत उन्होंने विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण कर पौधारोपण भी किया। प्रतिकुलपति से विदा लेते हुए उन्होंने गुरुमुखी वेद, उपनिषद्, पुराण एवं युगसाहित्य की भेंट को भी सहर्ष स्वीकार किया।

गणमान्य अतिथियों में श्री अविनाश पांडेय जी (प्रभारी महासचिव, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) का भी विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। औपचारिक भेंट के उपरांत उन्होंने विश्वविद्यालय में वंदनीया माताजी द्वारा प्रतिष्ठित प्रज्ञेश्वर महादेव के मंदिर में पूजन भी संपन्न किया।

इसी क्रम में आर्किटेक्ट्स फर्म के प्रमुख एवं वास्तु विशेषज्ञ श्री अशोक मोखा जी का भी विश्वविद्यालय आगमन हुआ। विश्वविद्यालय में कुशल निर्माणकार्य की कार्ययोजना को अंतरराष्ट्रीय स्तर का बनाए जाने के संदर्भ में उन्होंने माननीय कुलपति जी एवं प्रतिकुलपति जी से भेंट की एवं आपसी हितों के कई क्षेत्रों पर चर्चा की।

विशिष्ट अतिथियों के देव संस्कृति विश्वविद्यालय आने के क्रम में भारत के लोकसभा अध्यक्ष माननीय श्री ओम बिड़ला जी की धर्मपत्नी श्रीमती अमिता बिड़ला जी सपरिवार विश्वविद्यालय पधारीं। अपनी तीन दिवसीय यात्रा के क्रम में उन्होंने संपूर्ण विश्वविद्यालय का भ्रमण किया एवं मृत्युंजय सभागार का अवलोकन करने के पश्चात प्रज्ञेश्वर महादेव मंदिर में शिवाभिषेक एवं रुद्राभिषेक संपन्न किया।

अपनी इस यात्रा को उन्होंने जीवन का सबसे मनोरम क्षण बताया और कहा कि वे बचपन से गायत्री परिवार से जुड़ी हुई हैं एवं पूज्य गुरुदेव के प्रति उनके अंतरंग में जो सम्मान का भाव है, उसे पूर्णतया अभिव्यक्त कर पाना संभव ही नहीं है। इस यात्रा के दौरान उनकी भेंट देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति एवं श्रद्धेय कुलाधिपति जी से हुई।

इसी क्रम में विश्वप्रसिद्ध संस्थान भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के निदेशक डॉ० मोहंती जी सपरिवार एवं वरिष्ठ वैज्ञानिकों के एक दल के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे। यहाँ आने पर उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट-वार्त्ता की एवं विश्वविद्यालय के विभिन्न शोधकेंद्रों द्वारा की जा रही शोधों का समग्र अवलोकन किया।

उन्होंने कहा कि जिस तरह की शोधों को देव संस्कृति विश्वविद्यालय कर रहा है एवं भारतीय पारंपरिक ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए जो प्रयत्न देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा किए जा रहे हैं—वे न केवल प्रशंसनीय हैं, बल्कि अनुकरणीय भी हैं। इस अवसर पर भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मध्य एक साझा अनुबंध को तैयार करने पर सहमति बनी।

उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय का परमाणु ऊर्जा विभाग के टाटा मेमोरियल सेंटर एवं प्रतिष्ठित टाटा कैंसर अनुसंधान केंद्र के साथ एक अनुबंध पहले से ही है, जिसके अंतर्गत दोनों संस्थान औषधियों पर अनुसंधान एवं उनके निर्माण संबंधित प्रौद्योगिकी के विकास हेतु मिलकर कार्य कर रहे हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा अंतरराष्ट्रीय फलक पर किए जा रहे कार्यक्रमों के अंतर्गत देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी विगत दिनों अपने यूरोप प्रवास के तहत विण्डसर कैसल में आयोजित एक अंतर्धार्मिक महासभा में मुख्य वक्ता के रूप में सम्मिलित हुए। इस सभा में अनेकों लब्धप्रतिष्ठित धार्मिक नेताओं एवं नोबुल पुरस्कार विजेताओं ने भागीदारी की। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अपने उद्‌बोधन में सभी प्रतिभागियों को गायत्री परिवार के आधारभूत तत्त्वों से एवं परमपूज्य गुरुदेव के जीवन दृष्टिकोण से अवगत कराया।

इसी यात्रा के क्रम में प्रतिकुलपति जी की मुलाकात ब्रिटेन स्थित भारतीय दूतावास की उच्चायुक्त श्रीमती गायत्री कुमार जी एवं समन्वय मंत्री श्री मनमीत सिंह नारंग जी से हुई। इस मुलाकात के अवसर पर उन्होंने माननीय उच्चायुक्त को गायत्री परिवार के द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों से परिचित कराया। इसी क्रम में उनकी भेंट भारत में ब्रिटेन के पूर्व उच्चायुक्त सर डोमिनिक एस्क्विथ एवं राष्ट्रमंडल राष्ट्रों के छठे महासचिव के रूप में कार्यरत श्रीमती पैट्रिसिया स्कॉटलैंड से हुई। इस भेंट में कॉमनवेल्थ संघ द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ मिलकर एक लीडरशिप एकेडमी स्थापित करने पर चर्चा की गई।

विदित हो कि श्रीमती पैट्रिसिया स्कॉटलैंड कॉमनवेल्थ राष्ट्रों की प्रथम महिला महासचिव हैं एवं उनकी उपलब्धियों में आस्था पर आधारित कार्यप्रणाली प्रमुख है। सन् 2007 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री द्वारा उन्हें महान्यायवादी का पद प्रदान किया था, जिसे प्राप्त करने वाली वे पहली महिला थीं। इससे पूर्व वे ब्रिटेन की विदेश मंत्री के रूप में भी कार्य कर चुकी हैं और साथ ही ब्रिटेन के इतिहास में पाँच संसदीय पुरस्कारों को प्राप्त करने वाली प्रथम एवं एकमात्र व्यक्ति हैं।

इन महत्त्वपूर्ण एवं उत्साह से भर देने वाली उपलब्धियों के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय को एक विलक्षण सौभाग्य तब प्राप्त हुआ जब भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री एम. वेंकैया नायडू ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान का शुभारंभ किया। इसके साथ ही उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्थापित एशिया के प्रथम एवं एकमात्र बाल्टिक सेंटर का निरीक्षण किया तथा देश के लिए अपना सर्वोच्च बलिदान देने वाले वीर शहीदों की स्मृति में बनी शौर्य दीवार पर पुष्पांजलि अर्पित की।

माननीय उपराष्ट्रपति जी एवं उत्तराखंड के माननीय राज्यपाल ले०ज० (सेनि०) श्री गुरमीत सिंह जी का विश्वविद्यालय पहुँचने पर प्रतिकुलपति जी द्वारा पुष्पगुच्छ भेंट कर उनका स्वागत किया गया। माननीय उपराष्ट्रपति जी एवं माननीय राज्यपाल अपने एकदिवसीय प्रवास के दौरान देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचे थे। दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान का उद्घाटन करने पर माननीय उपराष्ट्रपति जी ने कहा कि यह संस्थान क्षेत्रीय स्थिरता को लाने एवं आपसी सकारात्मक व्यवहार को विकसित करने का केंद्र बनेगा। उन्होंने इसे एक मील का पत्थर घोषित किया।

इसके साथ ही माननीय उपराष्ट्रपति जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय को प्रकृति एवं संस्कृति, दोनों का एक अभूतपूर्व मिश्रण बताया और यह कहा कि इस परिसर में प्राकृतिक सौंदर्य एवं सांस्कृतिक विरासत, दोनों एक साथ देखे जा सकते हैं।

साथ ही उन्होंने हर विद्यार्थी को माँ, मातृभाषा और मातृभूमि के लिए कार्य करने को प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि भारत में विविधता में एकता ही यहाँ की विशेषता है। वे बोले कि शिक्षा के प्रकाश में ही व्यक्ति एक जिम्मेदार नागरिक बन पाता है और ऐसे जिम्मेदार नागरिक देव संस्कृति विश्वविद्यालय में ही तैयार किए जा सकते हैं।

माननीय राज्यपाल ने तो अपने जीवन की प्रेरणा अखंड दीपक को बताया और कहा कि वे प्रतिदिन अपने ध्यान में अखंड दीपक की ज्योति में स्वयं को समर्पित कर देते हैं। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने इस संस्थान की स्थापना के उद्देश्य पर प्रकाश डाला और कुलपति जी ने आभार प्रदर्शन किया। माननीय उपराष्ट्रपति जी ने प्रज्ञेश्वर महादेव पर पूजन कर विश्वशांति के लिए कामना भी की तथा उस मंदिर परिसर में रुद्राक्ष का पौधा भी लगाया। माननीय उपराष्ट्रपति जी ने अपनी यात्रा का अंत श्रद्धेय कुलाधिपति जी एवं श्रद्धेया जीजी से मिलकर एवं अखंड दीपक के दर्शन के साथ किया। यह एक अविस्मरणीय यात्रा रही। ❑

अमावस्या की रात में दीपक ने देखा कि आकाश में न चाँद है और न तारे। बस, वह अकेला ही संसार को प्रकाश दे रहा है। अपने इस पराक्रम पर उसको अभिमान हो गया और वह समस्त संसार को संबोधित करता हुआ बोला—''जरा मेरी महिमा तो देखो! मेरी ही कृपा से तुम सब तुच्छ प्राणी अंधकार में कुछ देख पा रहे हो। मुझे प्रणाम करो, मेरी दयालुता का गुणगान करो।'' दीपक की इस अहंकारोक्ति को बाकी सबने महत्त्व न दिया, परंतु एक जुगनू से न रहा गया और वह बोला—''एक रात के अस्तित्व पर इतना अहंकार। तनिक ठहरो, प्रभात होने पर तुमसे तुम्हारी वास्तविकता पूछूँगा।'' अधिकार पाकर किसी को मदांध नहीं हो जाना चाहिए।

संपूर्ण वातावरण बनेगा गायत्रीमय

जो ईश्वरीय उद्देश्य के लिए जीवन को समर्पित कर देना चाहते हैं, उनकी प्रसन्नता भौतिक या लौकिक साधनों की प्राप्ति से नहीं आती, बल्कि भगवान के कार्य को आगे बढ़ाने से आती है। ऐसे ही व्यक्तियों का चयन भी गुरुसत्ता करती है और उन्हें लोक-उत्थान के पथ पर चलने के लिए प्रेरित भी करती है।

सद्गुरु, शिष्यों से मात्र पात्रता के परिमार्जन का उपहार भी चाहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चाहत उन्हें होती भी नहीं। जो अपनी भावनाओं को गुरुचरणों में समर्पित कर पाने की सामर्थ्य रखते हैं—उनको सद्गुरु उत्साह, उल्लास, बढ़े मनोबल एवं आत्मबल का ऐसा उपहार देते हैं कि शिष्य का व्यक्तित्व विवेकानंद एवं शिवाजी के स्तर का होकर के ही दम लेता है।

परमपूज्य गुरुदेव के संसर्ग में आने वाले समस्त परिजनों को भी जाग्रत विवेकशीलता, परिष्कृत दृष्टिकोण के रूप में एक ऐसा ही उपहार मिला था। सही अर्थों में यही शक्तिपात के समकक्ष है—जिसके परिणामस्वरूप जीवन की दशा एवं दिशा, दोनों में ही चमत्कारिक स्तर का परिवर्तन देखने को मिलता है।

लोगों की आदत है कि वे महापुरुषों के जीवन का मूल्यांकन चमत्कारिक घटनाक्रमों से करते हैं, परंतु जो सबसे बड़ा चमत्कारिक घटनाक्रम सामान्य व्यक्तियों के जीवन में परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी से जुड़ने के बाद संभव हुआ, वो परिष्कृत एवं परिमार्जित व्यक्तित्व की प्राप्ति का था।

जाग्रत-जीवंत व्यक्तित्व, जिनके चिंतन में तेजस्विता एवं हृदय में कोमलता का प्रभाव था, जिनका पुरुषार्थ प्रखर एवं व्यक्तित्व में आदर्शवादिता विद्यमान थी—ऐसे व्यक्तित्वों का निर्माण परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने प्रचुरता तथा बहुलता के साथ किया। सामान्य मनुष्यों के भीतर कुछ असामान्य कर देने की प्रेरणा को उत्पन्न कर देने को ही परमपूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण योजना, विचारक्रांति-अभियान का नाम दिया।

परमपूज्य गुरुदेव ने इस तथ्य को अपने लेखों में लिख करके भी बताया कि यह समय ऐसा है, जब महाकाल मानवीय चेतना में आमूलचूल हेर-फेर कर देना चाहते हैं। ऐसे समय इतिहास में बार-बार नहीं आते। मानवीय चेतना, मन:स्थिति, व्यक्ति के सोचने का तरीका यदि बदल गया तो धरती पर स्वर्ग स्वत: ही आ जाएगा। हमारे जितने भी निर्धारण हैं वो इसी एक लक्ष्य पर केंद्रित रहे हैं। धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण से लेकर गायत्री तीर्थ शांतिकुंज की स्थापना तथा तीर्थों की प्रसुप्त चेतना जगाने से लेकर भारतभूमि की देवात्म शक्ति की कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया इसी उद्देश्य विशेष को लेकर संपन्न की गई है।

ये शब्द साधारण शब्द नहीं हैं। महापुरुषों, संतों का आगमन धरती पर होता ही रहता है। उनके जीवन अनेकों के लिए अनुकरणीय भी बनते हैं, परंतु मानवीय प्रकृति के आमूलचूल परिवर्तन की योजना सर्वोत्कृष्ट महामानवों के द्वारा ही बनाई जा सकनी संभव हो पाती है। उच्चस्तरीय शक्तियों में ही यह ताकत होती है कि वे व्यक्ति की मन:स्थिति को इस तीव्रता के साथ बदलती हैं कि उसके पूर्ववर्ती जीवन में और उनके स्पर्श के बाद के जीवन में जमीन-आसमान का फरक आ जाता है। देखते-देखते यह जाग्रत चेतना एक क्रांति का रूप ले लेती है और फिर समस्त धरती पर एक नूतन वातावरण का निर्माण संभव हो पाता है।

इसीलिए परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा भी कि मेरा परिवर्तन किसी नई मनुष्य जाति में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे साधारण से दिखने वाले प्रज्ञा परिजनों में आ उतरेगा। इनको आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों को जीवन में उतारकर श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ते हुए शीघ्र ही देखा जा सकेगा और नवयुग इन्हीं के द्वारा आकर रहेगा। मानव में देवत्व जितना सही है,

उतना ही धरती पर स्वर्ग का अवतरण भी। सही पूछा जाए तो मानवता की समस्त समस्याओं का यही एकमात्र सार्थक एवं सकारात्मक समाधान है।

जैसा कि पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि मानवता की समस्याएँ इनसान के संस्कारों से पतित हो जाने के कारण ही जन्मी हैं। बढ़ते हुए मनोरोगों से लेकर बढ़ते दुराचार-व्यभिचार के पीछे कारण एक ही है कि इनसान मानवोचित गरिमा को भुलाकर बैठा है। अंत:करण की शुद्धि एवं सद्बुद्धि के मार्ग का चयन ही इन सभी समस्याओं के समाधान का एकमात्र उपाय है। यही कारण था कि परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने गायत्री मंत्र को आधार बनाकर आस्थाओं को सकारात्मक दिशा देने का और उसी के आधार पर मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण के संकल्प को पूर्ण करने का निश्चय किया।

ये ध्यान में रखते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा कि अगले दिनों सारा वातावरण ही गायत्रीमय बनना है। गायत्री-उपासना चिरकाल से इस देश को शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करती रही है। इस युग के लिए तो यह संजीवनी बूटी की तरह से है। इसीलिए पूज्य गुरुदेव ने समस्त भारत में माँ गायत्री की चेतना को धारण किए हुए शक्तिपीठों की स्थापना का क्रम चलाया। पूज्यवर ने लिखा भी कि देवी-देवताओं की साकारोपासना तो बहुत होती है, किंतु आद्यशक्ति को जो जगज्जननी हैं, आदिस्रोत हैं, बिलकुल ही भुला दिया गया।

इसलिए भारत के कोने-कोने में ये स्थापनाएँ अनिवार्य हैं, ताकि लोगों के मन में अवतार सत्ता के अवतरित होने की पृष्ठभूमि बन सके। गायत्री महामंत्र के संबंध में अथर्ववेद में जो सूक्त आया है, वह कहता है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं, कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

इसका एक-एक शब्द पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के जीवन में चरितार्थ होता हुआ दिखाई पड़ता है। उनके स्वयं के जीवन में गायत्री के तत्त्वज्ञान का जो बीजारोपण उन्होंने किया था—उसी का परिणाम था कि इतना बृहत् गायत्री परिवार आज एक विशाल वटवृक्ष के रूप में खड़ा दिखाई पड़ता है। हजारों-लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुँचा यह गायत्री परिवार वस्तुत: उनकी साधना की प्रत्यक्ष सिद्धि का परिणाम है।

जन-जन तक पहुँचे इस अभियान को देखकर इस दैवी संकेत का स्पष्ट आभास होता है कि अगले दिनों प्रज्ञावतार का निष्कलंक रूप अवतरित होने वाला है, दुर्बुद्धि के वातावरण का अंत निकट आ गया है; क्योंकि अब संपूर्ण वातावरण ही गायत्रीमय बनने वाला है। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के एक शिष्य ने उनसे पूछा—"संसार में किस तरह रहना चाहिए?" अपने शिष्य की जिज्ञासा का समाधान करते हुए वे कहने लगे—"सब काम करना चाहिए, परंतु मन ईश्वर में रखना चाहिए। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सब के साथ रहते हुए सब की सेवा करनी चाहिए, परंतु मन में इस ज्ञान को दृढ़ रखना चाहिए की ये हमारे कोई नहीं हैं।"

उदाहरणस्वरूप उन्होंने समझाया—"किसी धनी के घर की दासी उसके घर का कुल काम करती है, किंतु उसका मन अपने गाँव के घर पर लगा रहता है। मालिक के लड़कों का वह अपने लड़कों की तरह लालन-पालन करती है, उन्हें 'मेरा मुन्ना' 'मेरा राजा' कहती है, पर मन-ही-मन खूब जानती है कि ये मेरे कोई नहीं हैं। कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर, जहाँ उसके अंडे रखे हैं। संसार का काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।" गुरु द्वारा दिए उपाय को सुनकर शिष्य संतुष्ट हुआ व मन के समुचित उपचार में जुट गया।

संपूर्ण वातावरण बनेगा गायत्रीमय

जो ईश्वरीय उद्देश्य के लिए जीवन को समर्पित कर देना चाहते हैं, उनकी प्रसन्नता भौतिक या लौकिक साधनों की प्राप्ति से नहीं आती, बल्कि भगवान के कार्य को आगे बढ़ाने से आती है। ऐसे ही व्यक्तियों का चयन भी गुरुसत्ता करती है और उन्हें लोक-उत्थान के पथ पर चलने के लिए प्रेरित भी करती है।

सद्गुरु, शिष्यों से मात्र पात्रता के परिमार्जन का उपहार भी चाहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चाहत उन्हें होती भी नहीं। जो अपनी भावनाओं को गुरुचरणों में समर्पित कर पाने की सामर्थ्य रखते हैं—उनको सद्गुरु उत्साह, उल्लास, बढ़े मनोबल एवं आत्मबल का ऐसा उपहार देते हैं कि शिष्य का व्यक्तित्व विवेकानंद एवं शिवाजी के स्तर का होकर के ही दम लेता है।

परमपूज्य गुरुदेव के संसर्ग में आने वाले समस्त परिजनों को भी जाग्रत विवेकशीलता, परिष्कृत दृष्टिकोण के रूप में एक ऐसा ही उपहार मिला था। सही अर्थों में यही शक्तिपात के समकक्ष है—जिसके परिणामस्वरूप जीवन की दशा एवं दिशा, दोनों में ही चमत्कारिक स्तर का परिवर्तन देखने को मिलता है।

लोगों की आदत है कि वे महापुरुषों के जीवन का मूल्यांकन चमत्कारिक घटनाक्रमों से करते हैं, परंतु जो सबसे बड़ा चमत्कारिक घटनाक्रम सामान्य व्यक्तियों के जीवन में परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी से जुड़ने के बाद संभव हुआ, वो परिष्कृत एवं परिमार्जित व्यक्तित्व की प्राप्ति का था।

जाग्रत-जीवंत व्यक्तित्व, जिनके चिंतन में तेजस्विता एवं हृदय में कोमलता का प्रभाव था, जिनका पुरुषार्थ प्रखर एवं व्यक्तित्व में आदर्शवादिता विद्यमान थी—ऐसे व्यक्तित्वों का निर्माण परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने प्रचुरता तथा बहुलता के साथ किया। सामान्य मनुष्यों के भीतर कुछ असामान्य कर देने की प्रेरणा को उत्पन्न कर देने को ही परमपूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण योजना, विचारक्रांति-अभियान का नाम दिया।

परमपूज्य गुरुदेव ने इस तथ्य को अपने लेखों में लिख करके भी बताया कि यह समय ऐसा है, जब महाकाल मानवीय चेतना में आमूलचूल हेर-फेर कर देना चाहते हैं। ऐसे समय इतिहास में बार-बार नहीं आते। मानवीय चेतना, मन:स्थिति, व्यक्ति के सोचने का तरीका यदि बदल गया तो धरती पर स्वर्ग स्वत: ही आ जाएगा। हमारे जितने भी निर्धारण हैं वो इसी एक लक्ष्य पर केंद्रित रहे हैं। धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण से लेकर गायत्री तीर्थ शांतिकुंज की स्थापना तथा तीर्थों की प्रसुप्त चेतना जगाने से लेकर भारतभूमि की देवात्म शक्ति की कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया इसी उद्देश्य विशेष को लेकर संपन्न की गई है।

ये शब्द साधारण शब्द नहीं हैं। महापुरुषों, संतों का आगमन धरती पर होता ही रहता है। उनके जीवन अनेकों के लिए अनुकरणीय भी बनते हैं, परंतु मानवीय प्रकृति के आमूलचूल परिवर्तन की योजना सर्वोत्कृष्ट महामानवों के द्वारा ही बनाई जा सकनी संभव हो पाती है। उच्चस्तरीय शक्तियों में ही यह ताकत होती है कि वे व्यक्ति की मन:स्थिति को इस तीव्रता के साथ बदलती हैं कि उसके पूर्ववर्ती जीवन में और उनके स्पर्श के बाद के जीवन में जमीन-आसमान का फरक आ जाता है। देखते-देखते यह जाग्रत चेतना एक क्रांति का रूप ले लेती है और फिर समस्त धरती पर एक नूतन वातावरण का निर्माण संभव हो पाता है।

इसीलिए परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा भी कि मेरा परिवर्तन किसी नई मनुष्य जाति में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे साधारण से दिखने वाले प्रज्ञा परिजनों में आ उतरेगा। इनको आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों को जीवन में उतारकर श्रेष्ठता के पथ पर बढ़ते हुए शीघ्र ही देखा जा सकेगा और नवयुग इन्हीं के द्वारा आकर रहेगा। मानव में देवत्व जितना सही है,

उतना ही धरती पर स्वर्ग का अवतरण भी। सही पूछा जाए तो मानवता की समस्त समस्याओं का यही एकमात्र सार्थक एवं सकारात्मक समाधान है।

जैसा कि पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि मानवता की समस्याएँ इनसान के संस्कारों से पतित हो जाने के कारण ही जन्मी हैं। बढ़ते हुए मनोरोगों से लेकर बढ़ते दुराचार-व्यभिचार के पीछे कारण एक ही है कि इनसान मानवोचित गरिमा को भुलाकर बैठा है। अंत:करण की शुद्धि एवं सद्बुद्धि के मार्ग का चयन ही इन सभी समस्याओं के समाधान का एकमात्र उपाय है। यही कारण था कि परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने गायत्री मंत्र को आधार बनाकर आस्थाओं को सकारात्मक दिशा देने का और उसी के आधार पर मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण के संकल्प को पूर्ण करने का निश्चय किया।

ये ध्यान में रखते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने लिखा कि अगले दिनों सारा वातावरण ही गायत्रीमय बनना है। गायत्री-उपासना चिरकाल से इस देश को शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करती रही है। इस युग के लिए तो यह संजीवनी बूटी की तरह से है। इसीलिए पूज्य गुरुदेव ने समस्त भारत में माँ गायत्री की चेतना को धारण किए हुए शक्तिपीठों की स्थापना का क्रम चलाया। पूज्यवर ने लिखा भी कि देवी-देवताओं की साकारोपासना तो बहुत होती है, किंतु आद्यशक्ति को जो जगज्जननी हैं, आदिस्रोत हैं, बिलकुल ही भुला दिया गया।

इसलिए भारत के कोने-कोने में ये स्थापनाएँ अनिवार्य हैं, ताकि लोगों के मन में अवतार सत्ता के अवतरित होने की पृष्ठभूमि बन सके। गायत्री महामंत्र के संबंध में अथर्ववेद में जो सूक्त आया है, वह कहता है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं, कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

इसका एक-एक शब्द पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के जीवन में चरितार्थ होता हुआ दिखाई पड़ता है। उनके स्वयं के जीवन में गायत्री के तत्त्वज्ञान का जो बीजारोपण उन्होंने किया था—उसी का परिणाम था कि इतना बृहत् गायत्री परिवार आज एक विशाल वटवृक्ष के रूप में खड़ा दिखाई पड़ता है। हजारों-लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुँचा यह गायत्री परिवार वस्तुतः उनकी साधना की प्रत्यक्ष सिद्धि का परिणाम है।

जन-जन तक पहुँचे इस अभियान को देखकर इस दैवी संकेत का स्पष्ट आभास होता है कि अगले दिनों प्रज्ञावतार का निष्कलंक रूप अवतरित होने वाला है, दुर्बुद्धि के वातावरण का अंत निकट आ गया है; क्योंकि अब संपूर्ण वातावरण ही गायत्रीमय बनने वाला है। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के एक शिष्य ने उनसे पूछा—''संसार में किस तरह रहना चाहिए?'' अपने शिष्य की जिज्ञासा का समाधान करते हुए वे कहने लगे—''सब काम करना चाहिए, परंतु मन ईश्वर में रखना चाहिए। माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सब के साथ रहते हुए सब की सेवा करनी चाहिए, परंतु मन में इस ज्ञान को दृढ़ रखना चाहिए की ये हमारे कोई नहीं हैं।''

उदाहरणस्वरूप उन्होंने समझाया—''किसी धनी के घर की दासी उसके घर का कुल काम करती है, किंतु उसका मन अपने गाँव के घर पर लगा रहता है। मालिक के लड़कों का वह अपने लड़कों की तरह लालन-पालन करती है, उन्हें 'मेरा मुन्ना' 'मेरा राजा' कहती है, पर मन-ही-मन खूब जानती है कि ये मेरे कोई नहीं हैं। कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर, जहाँ उसके अंडे रखे हैं। संसार का काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।'' गुरु द्वारा दिए उपाय को सुनकर शिष्य संतुष्ट हुआ व मन के समुचित उपचार में जुट गया।

सद्गुरुदेव का स्मरण

अपनी बिगड़ी जग में गुरुदेव सँभालेंगे।
हैं आप साथ हरपल, विश्वास न टालेंगे॥

सद्गुरु उपदेशों को, आदेश समझना है।
निस्पृह आसक्ति रहित, जीवन को गढ़ना है।
दुःख-पीड़ा के गुरुवर, व्यधान हटा लेंगे।
हैं आप साथ हरपल, विश्वास न टालेंगे॥

श्रद्धा के भावों में, मन वृत्ति पलटना है।
सद्ज्ञान पथों पर ही, नित आगे बढ़ना है।
अंबर से भी ऊँचा, गुरुदेव उछालेंगे।
हैं आप साथ हरपल, विश्वास न टालेंगे॥

जो राह दिखाई है, उस दिशा में चलना है।
नवसृजन हेतु तत्पर, हो हमें मचलना है।
गुरुवर जी नवयुग के, संसार को ढालेंगे।
हैं आप साथ हरपल, विश्वास न टालेंगे॥

ये देह बोध बँधकर, अज्ञान में गलना है।
गुरु-कृपा से रूपातीत, का रूपण करना है।
गुरु चरणों के प्रेमी, मुक्ति-पथ पा लेंगे।
है आप साथ हरपल, विश्वास न टालेंगे॥

—शोभाराम शशांक



कामठी, नागपुर (महाराष्ट्र) में संपूर्ण विश्व के दैहिक, दैविक एवं भौतिक कल्याण के निमित्त आयोजित स्वास्थ्य संवर्द्धन 108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ



युगतीर्थ शांतिकुंज प्रांगण में सूर्यार्घ्य एवं प्रभात फेरी के साथ हिंदू नववर्ष (संवत्-2079) का स्वागत

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-05-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023



देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज–गायत्रीकुंज, हरिद्वार में
दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान का उद्घाटन श्री एम. वेंकैया नायडू माननीय उपराष्ट्रपति भारत गणराज्य

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा
से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2402574 2412272, 2412273 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org